'कौल-कल्पतरु'
चण्डी

६७ वर्षों से प्रकाशित आध्यात्मिक पुस्तक-माला

श्रीकृष्ण-साधना

श्रीकृष्ण
पूजा,
ध्यान-साधना,
कवच-साधना,
मन्त्र-साधना

विश्व-गुरु
भगवान् श्रीकृष्ण
वर्णित
त्रयात्मक ज्ञान
सहित

प्रकाशक :
परा-वाणी आध्यात्मिक शोध-संस्थान
श्रीचण्डी-धाम, अलोपी-देवी मार्ग, प्रयाग-२११००६

पर्व-पत्र

०४ सितम्बर, ०९ शुक्रवार	भाद्रपद शुक्ला पूर्णिमा	पितृ-पक्ष-प्रारम्भ
०७ सितम्बर, ०९ सोमवार	आश्विन कृष्णा तृतीया	श्रीललिता-देवी-यात्रा-पूजा
११ सितम्बर, ०९ शुक्रवार	आश्विन कृष्णा सप्तमी	श्री महा-लक्ष्मी-व्रत-पूजा
१३ सितम्बर, ०९ रविवार	आश्विन कृष्णा नवमी	मातृ-नवमी
१७ सितम्बर, ०९ गुरुवार	आश्विन कृष्णा चतुर्दशी	श्रीविश्वकर्मा-जयन्ती
१८ सितम्बर, ०९ शुक्रवार	आश्विन अमावास्या	पितृ-विसर्जन

■ शारदीय नवरात्र एवं दीपावली, 'शुभ-कृत्' संवत् २०६६ वि० ■

१९ सितम्बर, ०९ शनिवार	आश्विन शुक्ला प्रतिपदा	शारदीय नवरात्र-प्रारम्भ
		(प्रातः-काल 'कलश'-स्थापना)
२६ सितम्बर, ०९ शनिवार	आश्विन शुक्ला अष्टमी	महा-अष्टमी-व्रत
		(महा-निशा-पूजन)
२७ सितम्बर, ०९ रविवार	आश्विन शुक्ला नवमी	महा-नवमी, होमादि
२८ सितम्बर, ०९ सोमवार	आश्विन शुक्ला दशमी	विजया दशमी
		(प्रातः-काल नवरात्र-व्रत-पारण)
०३ अक्टूबर, ०९ शनिवार	आश्विन पूर्णिमा	शरत्-पूर्णिमा, लक्ष्मी-इन्द्र-पूजा
०७ अक्टूबर, ०९ बुधवार	कार्तिक कृष्णा चतुर्थी	संकष्टी श्रीगणेश-चतुर्थी
०८ अक्टूबर, ०९ गुरुवार	कार्तिक कृष्णा पंचमी	श्रीकामेश्वरी-जयन्ती
११ अक्टूबर, ०९ रविवार	कार्तिक कृष्णा अष्टमी	श्रीराधा-जयन्ती
१५ अक्टूबर, ०९ गुरुवार	कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी	श्रीधन्वन्तरि-जयन्ती
१६ अक्टूबर, ०९ शुक्रवार	कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी	श्रीधूमावती-जयन्ती
		(नरक चतुर्दशी, सायं-काल श्रीहनुमान-जयन्ती)
१७ अक्टूबर, ०९ शनिवार	कार्तिक अमावास्या	दीपावली (श्रीकमला-जयन्ती)
		रात्रि में श्रीमहा-काली-पूजन

सूचना : 'चण्डी'-पुस्तक-माला, वर्ष ६८, अङ्क ६
'श्रीलक्ष्मी-साधना', २० सितम्बर, ०९ को भेजा जाएगा।

'कौल-कल्पतरु'
चण्डी

वर्ष ६८
अङ्क ०४

श्रीकृष्ण-साधना

★ 'मानस'-पूजा ★
★ 'बाह्य'-पूजा ★
★ 'ध्यान'-साधना ★
★ 'कबच'-साधना ★
★ 'नाम-मन्त्र'-साधना ★
★ 'दुर्लभ मन्त्रों' की साधना ★
★ 'आरती' ★

एवं

विश्व-गुरु भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा
'श्रीगीता' में वर्णित त्रयात्मक ज्ञान

★★★

सम्पादक
रमादत्त शुक्ल
ऋतशील शर्मा

★★★

प्रकाशक
पण्डित देवीदत्त शुक्ल स्मारक
परा-वाणी आध्यात्मिक शोध-संस्थान
कल्याण मन्दिर प्रकाशन
श्रीचण्डी-धाम, प्रयाग-राज-२११००६ ☎ ०५३२-२५०२७८३

अनुदान २५/-

भगवान् श्रीकृष्ण की बाह्य पूजा-विधि

♦ भगवान् श्रीकृष्ण की बाह्य पूजा हेतु पहले अपने पूजा-स्थान में भगवान् श्रीकृष्ण का 'ध्यान' करना चाहिए। फिर 'अष्ट-दल-कमल' बनाकर उसके ऊपर 'प्रतिमा' अथवा 'चित्र' स्थापित करना चाहिए। भगवान् श्रीकृष्ण की प्रतिमा अथवा चित्र स्थापित करने के बाद, अपने दोनों घुटने पृथ्वी पर मोड़कर बैठे और दाएँ हाथ में जल-फूल-अक्षत लेकर 'सङ्कल्प' करना चाहिए। यथा–

ॐ तत्सत् अद्यैतस्य ब्रह्मणोऽह्नि द्वितीय-प्रहरार्द्धे श्वेत-वराह-कल्पे जम्बू-द्वीपे भरत-खण्डे आर्यावर्त्त-देशे अमुक पुण्य-क्षेत्रे कलि-युगे कलि-प्रथम-चरणे अमुक-संवत्सरे अमुक-मासे अमुक-पक्षे अमुक-तिथौ अमुक-वासरे अमुक-गोत्रोत्पन्नो अमुक-नाम-शर्मा (वर्मा/दासः) अहं अभीष्ट-सिद्ध्यर्थे सपरिवारः श्रीकृष्ण-पूजनं करिष्ये।

♦ 'सङ्कल्प' करने के बाद हाथ में पुष्प लेकर प्रतिमा अथवा चित्र को स्पर्श करते हुए कहना चाहिए– '१. ॐ नमो भगवन्! श्री कृष्णोऽसि। २. ॐ नमो भगवन्! बलभद्रोऽसि। ३. ॐ नमो भगवन्! वसुदेवोऽसि। ४. ॐ नमो भगवन्! नन्दोऽसि। ५. ॐ नमो भगवति! यशोदाऽसि। ६. ॐ नमो भगवति! देविकोऽसि। ७. ॐ नमो भगवति! रोहिण्यसि। ८. ॐ नमो भगवति! सुभद्राऽसि। ९. ॐ नमो भगवति! दुर्गाऽसि। १०. ॐ नमो भगवति! रुक्मिण्यसि। ११. ॐ नमो भगवति! सत्यभामाऽसि।'

स्पर्श करते समय भावना करना चाहिए कि प्रतिमा अथवा चित्र में श्रीबलभद्र आदि दस आवरण-देवताओं के साथ भगवान् श्रीकृष्ण साक्षात् विराजमान हैं और यह भावना कर 'पुष्प' को प्रतिमा अथवा चित्र के समक्ष रखना चाहिए।

♦ अब भगवान् श्रीकृष्ण का 'ध्यान' करना चाहिए। यथा–

नीलोत्पल-दल-श्यामं, पीत-वस्त्र-धारिणं, सर्वालङ्कार-भूषितम्।
कौस्तुभोद्भासिताङ्गं, सौवर्ण-पर्यङ्क-स्थितं, सौवर्ण-कुम्भ-स्नार्पितम्।
देवक्युत्सङ्ग-स्थितं स्तन-पायिनं, चतुर्भुजं, शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म-धरम् ।
पद्म-पलाक्षं, श्रीवत्साङ्कित-वक्ष-स्थलं वन-माला-विभूषितं, जगत्-सेतुं श्रीपतिं हरिम् ।।

अर्थात् नीले कमल-दल के समान श्याम-वर्णवाले, पीताम्बर-धारी, सभी अलङ्कारों से युक्त कौस्तुभ-मणि की भाँति चमकते हुए अङ्गोंवाले, स्वर्ण के पलँग पर स्थित, सोने के कुम्भ में स्नान करनेवाले, देवकी की गोद में स्थित स्तन-पान करनेवाले, चतुर्भुज, शङ्ख-चक्र-गदा और पद्म-धारी, कमल-नयन, विप्र-चरण से अङ्कित वक्ष-स्थलवाले, वन-माला से विभूषित, संसार-सेतु, लक्ष्मी-पति श्रीहरि का ध्यान करता हूँ।

♦ उक्त प्रकार से 'ध्यान' करने के बाद प्रतिमा अथवा चित्र के सम्मुख दोनों हाथ जोड़कर दसों आवरण देवताओं के साथ भगवान् श्रीकृष्ण का आवाहन करना चाहिए। यथा–'**ॐ यज्ञाय, यज्ञेश्वराय, यज्ञ-पतये, यज्ञ-सम्भवाय, गोविन्दाय नमो नमः। नमो भगवन् श्रीकृष्ण! सपरिवाराय इहागच्छ इह तिष्ठ।**'

♦ दसों आवरण-देवताओं के सहित भगवान् श्रीकृष्ण का आवाहन करने के बाद प्रतिमा अथवा चित्र के सम्मुख एक पात्र रखकर पहले पवित्र जल में 'गन्धाक्षत' छोड़कर 'पाद्य' प्रदान करना चाहिए। यथा–**ॐ सपरिवाराय भगवते श्रीकृष्णाय नमः पादयोः पाद्यं समर्पयामि।**

♦ इसके बाद फल-फूल-दूब-अक्षत-तुलसी-युक्त अर्घ्य प्रदान करना चाहिए। यथा–**ॐ सपरिवाराय भगवते श्रीकृष्णाय नमः शिरसि अर्घ्यं समर्पयामि।**

♦ अर्घ्य देने के बाद 'गन्धाक्षत' प्रदान करना चाहिए। यथा–**ॐ सपरिवाराय भगवते श्रीकृष्णाय नमः गन्धाक्षतं समर्पयामि।**

♦ गन्धाक्षत प्रदान करने के बाद 'पुष्प' प्रदान करना चाहिए। यथा– **ॐ सपरिवाराय भगवते श्रीकृष्णाय नमः पुष्पं समर्पयामि।**

♦ पुष्प प्रदान करने के बाद 'धूप' प्रदान करना चाहिए। यथा– **ॐ सपरिवाराय भगवते श्रीकृष्णाय नमः धूपं घ्रापयामि।**

♦ धूप प्रदान करने के बाद 'दीप' दिखाना चाहिए। यथा–**ॐ सपरिवाराय भगवते श्रीकृष्णाय नमः दीपं दर्शयामि।**

♦ दीप प्रदान करने के बाद 'मधुपर्क' प्रदान करना चाहिए। यथा–**ॐ सपरिवाराय भगवते श्रीकृष्णाय नमः मधुपर्कं समर्पयामि।**

♦ मधुपर्क प्रदान करने के बाद 'आचमन' प्रदान करना चाहिए। यथा–**ॐ सपरिवाराय भगवते श्रीकृष्णाय नमः आचमनीयं समर्पयामि।**

♦ आचमन करने के बाद '**ॐ सहस्र-शीर्षा**' आदि '**पुरुष-सूक्त**' पढ़ते हुए प्रतिमा का प्रत्यक्ष रूप से एवं चित्र का मानसिक-रूप से '**स्नान**' कराना चाहिए। यथा–**ॐ सपरिवाराय भगवते श्रीकृष्णाय नमः स्नानं करिष्यामि।**

♦ 'स्नान' के बाद पुनः आचमन प्रदान करना चाहिए। यथा–**ॐ सपरिवाराय भगवते श्रीकृष्णाय नमः पुनः आचमनीयं समर्पयामि।**

♦ पुनः आचमन प्रदान करने के बाद '**पीत-वस्त्र, यज्ञोपवीत**' अर्पित करना चाहिए। यथा– **ॐ सपरिवाराय भगवते श्रीकृष्णाय नमः पीत-वस्त्रं, यज्ञोपवीतं समर्पयामि।**

♦ पीत-वस्त्र, यज्ञोपवीत अर्पित करने के बाद '**माला**' अर्पित करनी चाहिए। यथा–**ॐ सपरिवाराय भगवते श्रीकृष्णाय नमः पुष्प-मालां समर्पयामि।**

♦ माला अर्पित करने के बाद दूर्वा, तुलसी-दल, अनेक प्रकार के नैवेद्य अर्पित करना चाहिए। यथा– **ॐ सपरिवाराय भगवते श्रीकृष्णाय नमः दूर्वा, तुलसी-दल-सहितं नैवेद्यं समर्पयामि।**

♦ नैवेद्य अर्पित करने के बाद पुनः आचमन अर्पित करना चाहिए। यथा–**ॐ सपरिवाराय भगवते श्रीकृष्णाय नमः पुनः आचमनीयं समर्पयामि।**

♦ इसके बाद निम्न श्लोक पढ़ते हुए '**पुष्पाञ्जलि**' देना चाहिए। यथा–

त्राहि मां देव-देवेश, हरे! संसार-सागरात् । त्राहि मां दुःख-शोकाघ्न! रोग-शोकार्णवाद् हरे! ।।

दुर्वृत्तांस्त्रायसे विष्णो! ये स्मरन्ति सकृत्सकृत् । सोऽहं देवाति-दुर्वृत्तस्त्राहि मां शोक-सागरात् ।।
पुष्कराक्ष! निमग्नोऽहं, महत्यज्ञान-सागरे। त्राहि मां देव-देवेश! त्वद्-ऋतेऽन्यो न रक्षकः ।।

ॐ नमो भगवते! श्रीकृष्णाय नमः। ॐ नमो भगवते! बलभद्राय नमः। ॐ नमो भगवते! वसुदेवाय नमः। ॐ नमो भगवते! नन्दाय नमः। ॐ नमो भगवति! यशोदायै नमः। ॐ नमो भगवति! देवक्यै नमः। ॐ नमो भगवति! रोहिण्यै नमः। ॐ नमो भगवति! सुभद्रायै नमः। ॐ नमो भगवति! दुर्गायै नमः। ॐ नमो भगवति! रुक्मिण्यै नमः। ॐ नमो भगवति! सत्यभामायै नमः।'

♦ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण और उनके दस आवरण-देवताओं की पूजा करने के बाद–'ॐ सपरिवाराय भगवते श्रीकृष्णाय नमः' कहकर दाएँ हाथ से 'आरती' करनी चाहिए और बाँएँ हाथ से 'घण्टी' बजानी चाहिए।

♦ आरती करने के बाद निम्न मन्त्र पढ़कर तीन बार 'प्रदक्षिणा' कर दण्ड-वत् 'प्रणाम' करना चाहिए। यथा–

ॐ यानि कानि च पापानि, जन्मान्तर-कृतानि च। तानि तानि प्रणश्यन्तु, प्रदक्षिणं पदे-पदे।

'प्रणाम' करने के बाद यथा-शक्ति 'स्तोत्र', ध्यान-श्लोक आदि पढ़ना चाहिए।

♦ सबसे अन्त में हाथ जोड़कर, दोनों हथेलियों के बीच पुष्प लेकर प्रतिमा अथवा चित्र के सम्मुख 'क्षमापण-स्तोत्र' का पाठ करना चाहिए।

मन्त्र-हीनं क्रिया-हीनं, भक्ति-हीनं च यद् विभो! पूजितं कृष्ण! तत्-सर्वं, परिपूर्णः सदाऽस्तु मे।।
ॐ रूपं देहि यशो देहि, देहि भाग्यं भगवन्! देहि मे। धर्मान् देहि धनं देहि, सर्वान् कामान् प्रदेहि मे।।

♦ 'क्षमापण-स्तोत्र' के पाठ के बाद पुष्प को मस्तक पर लगाकर श्रद्धा-पूर्वक प्रतिमा अथवा चित्र के सम्मुख रख देना चाहिए और निम्न मन्त्र पढ़कर आवाहन किए गए सभी देवताओं का 'विसर्जन' करना चाहिए। यथा–

यान्तु देव-गणाः सर्वे, पूजामादाय मामकीम्। इष्ट - कामार्थ - सिद्ध्यर्थं, पुनरागमनाय च।।

ॐ नमो भगवन् श्रीकृष्ण! पूजितोऽसि, प्रसीद क्षमस्व, स्व-स्थानं गच्छ। ॐ नमो भगवन् श्रीबलभद्र! पूजितोऽसि, प्रसीद क्षमस्व, स्व-स्थानं गच्छ। ॐ नमो भगवन् श्रीवसुदेव! पूजितोऽसि, प्रसीद क्षमस्व, स्व-स्थानं गच्छ। ॐ नमो भगवन् श्रीनन्द! पूजितोऽसि, प्रसीद क्षमस्व, स्व-स्थानं गच्छ। ॐ नमो भगवति श्रीयशोदे! पूजिताऽसि, प्रसीद क्षमस्व, स्व-स्थानं गच्छ। ॐ नमो भगवति श्रीदेवकि! पूजिताऽसि, प्रसीद क्षमस्व, स्व-स्थानं गच्छ। ॐ नमो भगवति श्रीरोहिणि! पूजिताऽसि, प्रसीद क्षमस्व, स्व-स्थानं गच्छ। ॐ नमो भगवति श्रीसुभद्रे! पूजिताऽसि, प्रसीद क्षमस्व, स्व-स्थानं गच्छ। ॐ नमो भगवति श्रीसत्यभामे! पूजिताऽसि, प्रसीद क्षमस्व, स्व-स्थानं गच्छ। ॐ नमो भगवति श्रीरुक्मिणि! पूजिताऽसि, प्रसीद क्षमस्व, स्व-स्थानं गच्छ। ॐ नमो भगवति श्रीदुर्गे! पूजिताऽसि, प्रसीद क्षमस्व, स्व-स्थानं गच्छ।।

♦ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण सहित सभी देवताओं का विसर्जन कर कन्याओं-बालकों को दक्षिणादि देकर भगवान् श्रीकृष्ण की प्रतिमा या चित्र को श्रद्धा-पूर्वक जलाशय या नदी में प्रवाहित कर देना चाहिए अथवा 'अष्ट-दल-कमल' से उठाकर नित्य के पूजा-स्थान में रख देना चाहिए।

❋ ❋ ❋

भगवान् श्रीकृष्ण-'ध्यान'-साधना

गीतामृत को दुहनेवाले
भगवान् श्रीकृष्ण

अर्जुन-सखा
भगवान् श्रीकृष्ण

बाँसुरी-धारक
भगवान् श्रीकृष्ण

व्रज के युवराज
भगवान् श्रीकृष्ण

पीताम्बर से आच्छादित एवं
वैजयन्ती से अलंकृत
वृन्दावन-विहारी
भगवान् श्रीकृष्ण

देवकी-नन्दन
भगवान् श्रीकृष्ण

यशोदा-नन्दन
भगवान् श्रीकृष्ण

कालिय-नाग के फणों पर
मनोहर नृत्य करते
भगवान् श्रीकृष्ण

वाणासुर की नगरी के नाशक
भगवान् श्रीकृष्ण

शकट-रूप-धारी असुर-नाशक
भगवान् श्रीकृष्ण

ग्वालों से घिरे
भगवान् श्रीकृष्ण

स्वर्ण-झूले पर विराजमान
भगवान् श्रीकृष्ण

'शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म-धारी'
भगवान् श्रीकृष्ण

गोप-कन्याओं को निरन्तर मुग्ध करनेवाले
भगवान् श्रीकृष्ण

करोड़ों चन्द्रमा, सूर्य एवं विद्युत् के समान
आभा-मय भगवान् श्रीकृष्ण

भगवान् कृष्ण के विविध ध्यान

[स्थूल ध्यान द्वारा सूक्ष्म का बोध होता है। 'कुलार्णव तन्त्र' में स्पष्ट कहा गया है कि - 'जिस प्रकार गायों के सारे शरीर में व्याप्त दूध उनके स्तन से स्रवित होता है, उसी प्रकार सर्वत्र व्याप्त देवता प्रतिमाओं में विराजमान रहता है। प्रतिमा-रूपी बिम्ब के ध्यान-पूजन और विश्वास से देवता का सामीप्य मिलता है। जिस प्रकार गाय का घी शरीर में स्थित रहते हुए स्वतः पुष्टि-कारक नहीं होता अपितु परिश्रम के द्वारा वह पुष्टि-कारक होता है। ठीक उसी प्रकार शरीरों में स्थित परमेश्वरी ध्यान - पूजन के बिना मनुष्यों को फल नहीं देती।'

अतः हम सभी को चाहिए कि परमेश्वरी के अनन्त रूपों में से किसी एक रूप को 'इष्ट' के रूप में स्वीकार कर, नित्य उसका स्मरण - ध्यान - पूजन-जप' करें। इससे ही हम जन्म - मरण - दुःखादि से छूट सकते हैं।

'ध्यान' के लिए शास्त्रों में यह लिखा है कि -- अपने मन को सांसारिक बातों से समेटकर ध्यान करे। तब तक ध्यान करे, जब तक मूर्त- रूप का मन में प्रत्यक्ष होना स्थिर न हो जाए। चलते हुए अथवा अन्य कार्य करते हुए यदि वरण किया हुआ मूर्त - रूप मन से न मिटे, तो ध्यान सिद्ध समझना चाहिए।

'ध्यान' के सिद्ध होने पर मूर्त - रूप के गुण साधक में प्रकट होने लगते हैं और साधक जन्म - मरण - दुःखादि आदि से मुक्त हो जाता है।

उक्त बातों को देखते हुए यहाँ भगवान् कृष्ण के विविध ध्यान हिन्दी-अर्थ-सहित प्रस्तुत हैं। आशा है कि भगवान् कृष्ण को अपने "इष्ट" के रूप में स्वीकार करनेवाले बन्धु इनसे लाभ उठाएँगे।-सं०]

[१] **प्रपन्न-पारिजाताय, तोत्र-वेत्रैक-पाणये।**
ज्ञान-मुद्राय कृष्णाय, गीतामृत-दुहे नमः।।

अर्थात् जो शरणागतों के लिये कल्प-वृक्ष रूप हैं, जिनके एक हाथ में घोड़ों की लगाम और चाबुक है, दूसरा ज्ञान-मुद्रा से सुशोभित है — ऐसे गीतामृत को दुहनेवाले श्रीकृष्ण को प्रणाम है।

[२] **त्रिभुवन-कमलं तमाल-वर्णं, रवि-कर-गौरं वराम्बरं दधाने।**
वपुरलक-कुलावृताननाब्जम्, विजय-सखे रतिरस्तु मेऽनवद्या।।

अर्थात् जिनका शरीर त्रिभुवन-कमल एवं तमाल (पान) के समान साँवला है, जिन पर सूर्य-रश्मियों के समान श्रेष्ठ पीताम्बर लहराता रहता है, जिनके कमल-सदृश मुख पर घुँघराली अलकें लटकती रहती हैं, उन अर्जुन-सखा श्रीकृष्ण में मेरी निष्कपट प्रीति हो।

[३] **वर्हापीडं नटवर-वपुः कर्णयोः कर्णिकारम्,**
विभ्रद्-वासः कनक-कपिशं वैजयन्तीं च मालाम्।
रन्ध्रान् वेणोरधर-सुधया पूरयन् गोप-वृन्दैः,
वृन्दारण्यं स्व-पद-रमणं प्राविशद् गीत-कीर्तिः।।

अर्थात् भगवान् श्रीकृष्ण की वंशी-ध्वनि सुनते ही गोप-बालाएँ ध्यानस्थ हो गईं। उन्होंने देखा—मोर-पङ्खों का मुकुट पहने, कानों में कनेर के फूल धारण किए, स्वर्ण के समान सुन्दर पीत पट और वैजयन्ती माला से सुशोभित गोप-गणों के द्वारा गाई हुई अपनी कीर्त्ति को सुनते हुए, उनके साथ श्याम-सुन्दर नटवर-वेष में, अपने चरणों की विहार-भूमि 'वृन्दावन' में प्रवेश कर रहे हैं। आप बाँसुरी में अपने अधर की सुधा भरते हुए उसके छिद्रों पर अँगुली धरकर विविध स्वर निकाल रहे हैं।

[४] **मुरदि-मदमुदारं मर्दयन्नङ्ग-कान्त्या,**
वसन-रुचि-निरस्ताम्भोज-किञ्जल्क-शोभः।
तरुणिम-तरणीक्षा-विक्लवद्-बाल्य-चन्द्रो,
व्रज-नव-युवराजः कांक्षितं मे कृपीष्ट।।

अर्थात् जो अपनी अङ्ग-शोभा के द्वारा नवीन मेघ का मद-गर्व नष्ट कर रहे हैं, जो अपने वस्त्र की कान्ति द्वारा किञ्जल्क-शोभा का तिरस्कार कर रहे हैं और जिनके नव-यौवन-रूपी सूर्य के दर्शन से बाल्यावस्था-रूपी चन्द्रमा क्षीण-कान्ति हो रहा है, वे व्रज के नए युवराज श्रीकृष्ण हमारी आकांक्षा पूर्ण करें।

[५] **बर्हा-पीडाभिरामं मृग-मद-तिलकं कुण्डलाक्रान्त-गण्डम,**
कञ्जाक्षं कम्बु-कण्ठं स्मित-सुभग-मुखं स्वाधरे न्यस्त-वेणुम्।
श्यामं शान्तं त्रिभङ्गं रवि-कर-वसनं भूषितं वैजयन्त्या,
वन्दे वृन्दावनस्थं युवति-शत-वृतं ब्रह्म गोपाल-वेषम्।।

अर्थात् मैं वृन्दावन-विहारी, गोप-वेष-धारी ब्रह्म की वन्दना करता हूँ, जो मोर-मुकुट से अत्यन्त कमनीय लगते हैं, कस्तूरी का तिलक लगाए हैं, जिनके गण्ड-स्थल के सामने कुण्डल सु-शोभित हैं, कमल के से नेत्र हैं, शङ्ख के समान उतार-चढ़ाववाली ग्रीवा है, मुस्कान-युक्त मुखारविन्द अत्यन्त भला मालूम होता है, अधर पर वेणु सुशोभित है, जिनका श्याम-सुन्दर-विग्रह अत्यन्त शान्त एवं त्रिभङ्ग-ललित है, सूर्य-रश्मियों के समान चमकते पीताम्बर से आच्छादित एवं वैजयन्ती से अलंकृत है।

[६] **वन्दे तं देवकी-पुत्रं, सद्योजाताम्बुद-प्रभम्।**
शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म-धारिणं वन-मालिनम्।।

अथवा **वन्देऽहं देवकी-पुत्रं, सद्योजात-सम-प्रभम्।**
शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म-धारिणं वन-मालिनम्।।

अर्थात् मैं उन वन-माली देवकी-नन्दन की वन्दना करता हूँ, जो अपने चार हाथों में शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म लिए हैं तथा जो नवीन मेघ के समान कृष्ण-वर्ण हैं।

(सद्-बुद्धि की प्राप्ति हेतु उक्त ध्यान विशेष रूप से फल-प्रद है।)

[७] **नन्दाङ्गने पर्यटन्तं, धूलि - निचय - धूसरम्।**
दीप्त-मणि-गणोद्दीप्तं, यशोदा-लोचनोत्सुकम्।।

अथवा **नन्दाङ्गने पर्यटन्तं, धूलि - धूसर - विग्रहम्।**
दीप्त-मणि-गणोद्दीप्तं, मानव-लोचनोत्सुकम्।।

अर्थात् भगवान् कृष्ण नन्द के आँगन में धूल से लिपटे हुए घूम-फिर रहे हैं। उज्ज्वल मणियों से उनका शरीर सुशोभित है। यशोदा जी के नेत्र उन्हें उत्सुकतापूर्वक देख रहे हैं।

(इस ध्यान से पत्थर-जैसी मन्द बुद्धिवाले भी विद्वान् बन जाते हैं।)

[८] **पुत्रं मे रक्ष रक्षेति, द्विजेन प्रार्थितो हरिः।**
हृतं पुत्रं समाहृत्य, ददौ यस्तं विचिन्तये।।

अर्थात् किसी ब्राह्मण ने भगवान् श्रीकृष्ण से प्रार्थना की कि 'मेरे पुत्र की रक्षा करो—रक्षा करो।' इस पर उन्होंने उसके अपहृत पुत्र को लाकर उसे दे दिया।

(दीर्घायु और सुन्दर पुत्र की प्राप्ति हेतु उक्त ध्यान विशेष रूप से फल-प्रद है।)

[९] **क्लीं कालियस्य फणा-मध्ये, दिव्यं नृत्यं करोति तम्।**
नमामि देवकी - पुत्रं, नृत्य-राजानमच्युतम्।।

अर्थात् जो कालिय नाग के फणों के मध्य में मनोहर नृत्य करते हैं, उन नृत्य-राज देवकी-नन्दन अच्युत को मैं प्रणाम करता हूँ।

(उक्त ध्यान से विष-ग्रस्त व्यक्ति का विष नष्ट हो जाता है।)

[१०] **ज्वरेण संस्तुतं कृष्णं, बल-प्रद्युम्न-संयुतम्।**
दहन्तं बाण-नगरीं, गरुड़ोपरि-संस्थितम्।।

अर्थात् गरुड़ के ऊपर विराजमान भगवान् कृष्ण बाणासुर की नगरी को भस्म कर रहे हैं। बलराम और प्रद्युम्न उनके साथ हैं। ज्वर उनकी स्तुति कर रहा है।

(इससे ज्वर, शीतला, पीलिया, वायु-रोग आदि व्याधियाँ अच्छी हो जाती हैं।)

[११] **पद्भ्यां निक्षिप्य शकटं, रुदन्तं प्राकृतं यथा।**

अर्थात् बाल-रूप भगवान् श्रीकृष्ण अपने दोनों पैरों से शकट-रूप-धारी असुर को दूर धकेल कर सामान्य बच्चे के समान रो रहे हैं।

(उक्त ध्यान से बड़ी-से-बड़ी विपत्तियाँ दूर होती हैं।)

[१२] **गोपाल-जुष्ट-पादं च, वेणुमादाय संस्थितम्।**

अर्थात् ग्वालों का समूह भगवान् कृष्ण के चरणों की सेवा कर रहा है और वे अपने हाथों में वंशी लिए हैं। (उक्त ध्यान से पशुओं की रक्षा होती है और पशु-धन की वृद्धि होती है।)

[१३] **हरन्तं कल्प-द्रुमं, संस्तुतं देवताभिश्च, गरुड़ारूढ़मच्युतम्।**

अर्थात् गरुड़ पर विराजमान भगवान् पारिजात का हरण कर रहे हैं और देव-गण उनकी स्तुति कर रहे हैं।

(उक्त ध्यान से शत्रुओं की पराजय होती है, सङ्कट-बाधाएँ दूर होती हैं।)

[१४] **कदम्ब-मूले गायन्तं, गोपालं वन-मालिनम्।**
कदम्ब-कुसुमैर्जुष्टं, चिन्तयित्वा जनार्दनम्।।

अर्थात् कदम्ब-पुष्पों से सुशोभित और कदम्ब वृक्ष के मूल पर विराजमान तथा वन-माला पहने जनार्दन गोपाल गा रहे हैं।

(उक्त ध्यान से सम्पूर्ण संसार वशीभूत होता है। सर्व-विजय प्राप्त होती है।)

[१५] **सनकादि-स्तुतं कृष्णं, शुक्लाम्बर-धरं प्रभुम्।**
शङ्ख-चक्र-धरं ध्याये, पुण्डरीकाक्षमव्ययम्।।

अर्थात् शङ्ख-चक्र-धारी एवं श्वेत-वस्त्र पहने, कमल-नयन, अव्यय प्रभु कृष्ण की स्तुति सनकादि ऋषि कर रहे हैं।

(उक्त ध्यान से 'मोक्ष' की प्राप्ति होती है।)

[१६] **अव्याद् व्याकोष-नीलाम्बुज-रुचिररुणाम्भोज-नेत्रोऽम्बुजस्थो,**
बालो जङ्घा-कटीर-स्थल-कलि-तरणत्-किङ्किणीको मुकुन्दः।
दोर्भ्यां हैयङ्ग-वीणं दधदति-विमलं पायसं विश्व-वन्द्यो,
गो-गोपी-गोप-वीतोरुरु-नख-विलसत्-कण्ठ-भूषश्चिरं नः।।

अर्थात् गोपाल के शरीर की आभा खिले हुए नीले कमल के समान, दोनों आँखें लाल कमल-जैसी सुन्दर हैं। वे बाल-वेष में कमल के ऊपर नृत्य कर रहे हैं। पैरों और कमर में गुञ्जायमान नूपुर और करधनी हैं। एक हाथ में मक्खन और दूसरे में खीर लिए हैं। जगत्-पूज्य बाल-गोपाल गायों, ग्वालों और गोपियों से घिरे हुए हैं। गले में व्याघ्र-नख का आभूषण है। ऐसे बाल-गोपाल सदा हमारी रक्षा करें।

[१७] **पञ्च-वर्षमति-दृप्तमङ्गने, धावमानमति-चञ्चलेक्षणम्।**
किङ्किणी-वलय-तार-नूपुरैरञ्चितं नमत गोप-बालकम्।।

अर्थात् बाल-गोपाल पाँच वर्ष के बालक हैं। चञ्चल स्वभाववाले हैं, आँगन में दौड़ रहे हैं, आँखें चञ्चल हैं और करधनी, कङ्कन, हार, नूपुर आदि आभूषणों से विभूषित हैं। ऐसे गोप-बाल-रूपी भगवान् को नमस्कार।

[१८] **श्रीमत्-कल्पद्रुम-मूलोद्गत-कमल-लसत्-कर्णिका-संस्थितः,**
तच्छाखा-लम्बि-पद्मोदर-विसरदसंख्यात-रत्नाभिषिक्तः।
हेमाभः स्व-प्रभाभिस्त्रि-भुवनमखिलं भासयन् वासुदेवः,
पायाद् नः पायसादोहन-रत-नवनीतामृताशीर-सोमः।।

अर्थात् कल्प-वृक्ष के मूल से निकले हुए कमल की कर्णिका के मध्य में भगवान् गोपाल विराजमान हैं। कल्प-वृक्ष की शाखा से लम्बमान पद्म के मध्य से निकलते हुए अंसख्य रत्नों द्वारा उनका अभिषेक हो रहा है। उनके शरीर की आभा स्वर्ण-जैसी है, जिसके द्वारा तीनों लोकों को गोपाल-रूपी वासुदेव प्रकाशित कर रहे हैं। निरन्तर खीर, मक्खन और अमृत का सेवन करनेवाले वे गोपाल हमारी रक्षा करें।

[१९] **आरक्तोद्यान - कल्पद्रुम-तल-विलसत्-स्वर्ण-दोलाधिरूढ़म्।**
गोपीभ्यां प्रेक्ष्य-माणं विकसित-नव-बन्धूक-सिन्दूर-भासम्।।
बालंलोलाल-कान्तंकटि-तट-विलसत्-क्षुद्र-घण्टा-घण्टाढ्यम्।
वन्दे शार्दूल-कामांकुश-ललित-गणाकल्प-दीप्तं मुकुन्दम्।।

अर्थात् रक्त-वर्ण पुष्पों के उपवन के मध्य में कल्प-वृक्ष के मूल में स्वर्ण-झूले पर भगवान् गोपाल विराजमान हैं। दो गोपियाँ उन्हें देख रही हैं। गोपाल के शरीर की कान्ति खिले हुए नवीन बन्धूक पुष्प के समान सिन्दूर-वर्ण जैसी है। बाल-रूप में चञ्चल एवं अति सुन्दर हैं, कमर पर छोटी घण्टियों की माला से युक्त करधनी शोभायमान है। गले में व्याघ्र-नख से युक्त सुन्दर अलङ्कार द्वारा शोभायमान भगवान् गोपाल की मैं वन्दना करता हूँ।

[२०] **विष्णुं शारद-चन्द्र-कोटि-सदृशं शङ्खं रथाङ्गं गदा—**
मम्भोजम् दधतं सिताब्ज-निलयं कान्त्या जगन्मोहनम्।
आबद्धाङ्गद-हार-कुण्डल-महा-मौलिं स्फुरत्-कङ्कणम्,
श्रीवत्साङ्कमुदार-कौस्तुभ-धरं वन्दे मुनीन्द्रैः स्तुतम्।।

अर्थात् शरत्-कालीन कोटि-चन्द्रों के समान उज्ज्वल और मधुर कान्तिवाले, शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म-धारी, चतुर्भुज एवं श्वेत-पद्म पर विराजमान, अपनी कान्ति से सारे संसार को मुग्ध करनेवाले भगवान् वासुदेव की मैं वन्दना करता हूँ। वे अङ्गद, हार, कुण्डल, मुकुट और कङ्कणादि आभूषणों से विभूषित हैं। वक्षः-स्थल में श्रीवत्स-चिह्न और गले में कौस्तुभ मणि धारण किए हैं। श्रेष्ठ मुनि लोग उनकी स्तुति करते रहते हैं।

[२१] **स्मरेद् वृन्दावने रम्ये, मोहयन्तमनारतम्।**
गोविन्दं पुण्डरीकाक्षं, गोप-कन्याः सहस्रशः।।
आत्मनो वदनाम्भोजे, प्रेरिताक्षि-मधु-व्रताः।
पीडिताः काम-बाणेन, चिरमाश्लेषणोत्सुकाः।।
मुक्ता-हार-लसत्-पीन-तुङ्ग-स्तन-भरानताः।
स्रस्त-धम्मिल्ल-वसना, मद-स्खलित-भाषणाः।।
दन्त-पंक्ति-प्रभोद्भासि, स्पन्द-मानाधराञ्चिताः।
विलोभयन्तीर्विविधैर्विभ्रमैर्भाव - गर्वितैः।।

अर्थात् सुन्दर वृन्दावन में कमल-नयन गोविन्द सहस्रों गोप-कन्याओं को निरन्तर मुग्ध कर रहे हैं। ये गोपियाँ श्रीकृष्ण के मुख-कमल के प्रति अपने नेत्र-रूपी भौरों को प्रेरित कर रही हैं और वे काम-वाण से पीड़ित होकर श्रीकृष्ण के आलिङ्गन के लिए बड़ी उत्सुक हैं। मोतियों के हार से सुशोभित स्थूल एवं उन्नत पयोधरों के भार से वे झुकी हुई हैं, उनके वस्त्र और कंचुकी-बन्धन ढीले पड़ गए हैं और आनन्द के कारण वे अटपटी बोली बोल रही हैं। उज्वल दाँतों की पंक्ति की चमक से प्रकाशमान उनके होठ कम्पित हैं। वे विविध विलास-पूर्ण भाव-भङ्गिमाओं से श्रीकृष्ण को लुभा रही हैं।

[२२] **फुल्लेन्दीवर-कान्तिमिन्दु-वदनं वर्हावतंस-प्रियम्।**
श्रीवत्साङ्कमुदार-कौस्तुभ-धरं पीताम्बरं सुन्दरम्॥
गोपीनां नयनोत्पलार्चित-तनुं गो-गोप-सङ्घावृतम्।
गोविन्दं कल-वेणु-वादन-परं दिव्याङ्ग-भूषं भजे॥

अर्थात् खिले हुए इन्दीवर (श्याम-कमल) के समान श्रीकृष्ण के शरीर की शोभा है। चन्द्रमा के समान उज्वल मुख है। शिर पर मोर-पङ्ख का आभूषण विभूषित है। वक्ष पर 'श्रीवत्स'-चिह्न, कण्ठ में 'कौस्तुभ' मणि और सुन्दर पीले वस्त्र हैं। गोपियों के नेत्र-कमलों द्वारा पूजित शरीरवाले, गायों और ग्वालों के समूहों से घिरे हुए, वंशी द्वारा सुन्दर ध्वनि करने में तत्पर, दिव्य अलङ्कारों से विभूषित गोविन्द का मैं भजन करता हूँ।

[२३] **शङ्ख-चक्र - धनुर्वाण - पाशांकुश - धरोऽरुणः।**
वेणुं धमन् धृतो दोर्भ्यां, ध्येयः कृष्णो दिवाकरे॥

अर्थात् शङ्ख-चक्र, धनुष, वाण, पाश और अंकुश-धारी, अरुण-वर्ण और दोनों हाथों से वंशी पकड़कर उसे बजाते हुए श्रीकृष्ण का ध्यान सूर्य-मण्डल के मध्य में करना चाहिए।

[२४] **द्वारावत्यां सहस्रार्क-भासुरैर्भवनोत्तमैः।**
अनल्पैः कल्प-वृक्षैश्च, परीते मणि-मण्डपे॥
ज्वलद्-रत्न-मय-स्तम्भ-द्वार-तोरण-कुड्यके।
फुल्ल-स्रगुल्लसच्चित्र-वितानालम्बि-मौक्तिके॥
पद्म-राग-स्थली-राजद्-रत्न-नद्योश्च मध्यतः।
अनारत-गलद्-रत्न-धारस्य स्वस्तरोरधः॥
रत्न - दीपावलीभिश्च, प्रदीपित - दिगन्तरे।
उद्यदादित्य-सङ्काश-मणि-सिंहासनाम्बुजे ॥
समासीनोऽच्युतो ध्येयो, द्रुत-हाटक-सन्निभः।
समानोदित-चन्द्रार्क-तडित्-कोटि-सम-द्युतिः॥

अर्थात् 'द्वारावती' नगरी में सहस्रों सूर्य की किरणों जैसी आभावाला 'भवन'। बहुत से कल्प-वृक्षों द्वारा घिरा हुआ मणि-जटित 'मण्डप', जिसके खम्भे, द्वार, तोरण और दीवालें उज्वल रत्नों से युक्त

हैं। ('मण्डप' के मध्य में) विलक्षण 'वितान' (चन्द्रातप), जिसके चारों ओर खिले हुए पुष्पों की और मोतियों की मालाएँ लटक रही हैं। पद्म-राग-मणियों से विभूषित तटोंवाली दो रत्न-नदियों के मध्य में निरन्तर रत्नों की वर्षा करनेवाले 'देव-वृक्ष' (कल्पतरु) के नीचे उक्त 'मण्डप' विराजमान है। चारों ओर रत्न-दीपावली द्वारा सारी दिशाएँ प्रकाशमान हैं। (इस प्रकार के 'मण्डप' के मध्य में) उदीयमान सूर्य के समान उज्ज्वल मणि-जटित सिंहासन पर पद्मासीन, तप्त-स्वर्ण के समान शरीराभावाले 'अच्युत' (नारायण) का ध्यान करे। उदीयमान करोड़ों चन्द्रमा, सूर्य एवं विद्युत् के समान वे आभा-मय हैं।

[२५] **सर्वाङ्ग-सुन्दरः सौम्यः, सर्वाभरण-भूषितः।**
पीत-वासाश्चक्र-शङ्ख-गदा-पद्मोज्वलद्-भुजैः।।
अनारतच्छलद्-रत्न-धारौघ-कलसं स्पृशन्।
वाम-पादाम्बुजाग्रेण, मुञ्चता पल्लवच्छविम्।।
रुक्मिणी-सत्यभामे द्वे, मूर्ध्नि रत्नौघ-धारया।
सिञ्चन्त्यौदक्ष-वामस्थे,स्व-दोःस्थ-कलसोत्थया।।
नाग्नजिती सुनन्दा च, दिशन्त्यौ कलसौ तयोः।
ताभ्यां च दक्ष - वामस्थे, मित्र-विन्दा-सुलक्षणे।।
रत्न-नद्योः समुद्धृत्य, रत्न-पूर्णौ घटौ तयोः।
जाम्बवती सुशीला च, दिशन्त्यौ दक्ष-वामके।।
बहिः षोडश-साहस्रच-संख्याताःपरितःप्रियाः।
ध्येयाः कनक-रत्नौघ-धाराम्बु-कलसोज्ज्वलाः।।
तद्-बहिश्चाष्ट-निधयः, पुररन्तौ धनैर्धराम्।
तद्-बहिर्वृष्णयः सर्वे, पुरोवच्च सुरादयः।।

अर्थात् भगवान् अच्युत का सारा शरीर अत्यन्त सुन्दर, सौम्य और सभी प्रकार के आभूषणों से विभूषित है। वे पीताम्बर-धारी हैं और हाथों में शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म लिए हैं। 'रुक्मिणी' एवं 'सत्यभामा' दोनों क्रमशः दाएँ और बाँएँ भाग में खड़ी हैं और अपने हाथों में लिए कलशों से निकलती हुई रत्न-धारा द्वारा उनके मस्तक का अभिषेक कर रही हैं। 'नाग्नजिती' और 'सुनन्दा' उन दोनों (रुक्मिणी-सत्यभामा) को कलश देती हैं तथा उनके दाएँ व बाँएँ ओर खड़ी 'मित्र-विन्दा' और 'सुलक्षणा' रत्न-नदी से रत्न निकालकर दोनों कलशों (घड़ों) को भरती जाती हैं। 'जाम्बवती' और 'सुशीला' उन दोनों के दाएँ व बाँएँ ओर खड़ी होकर उन्हें निर्देश कर रही हैं। इन सबके पीछे सोलह हजार सुन्दर स्त्रियाँ रत्न-धारा से युक्त स्वर्ण-कलश अपने हाथों में लिए शोभायमाना हैं। उन सबके बाहर के क्षेत्र को अष्ट-निधियाँ धन-वैभव से परिपूर्ण कर रही हैं। उनके बाहर समस्त यादव-गण और देव-गण बैठे हैं।

★ ★ ★

भगवान् श्रीकृष्ण-'कवच'-साधना

ब्रह्मा जी द्वारा परमात्मा, परमेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण से उपदेश हेतु प्रार्थना एवं भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा ब्रह्मा जी को उपदेशित 'कवच'

प्रस्तुत **श्रीकृष्ण-कवच-स्तोत्र** सभी लोगों के लिए उपयोगी है। विशेष रूप से जब कोई **नया कार्य** आरम्भ करना हो और कार्य आरम्भ करना कठिन प्रतीत होता हो, तो प्रस्तुत **कवच-स्तोत्र** का श्रद्धा-पूर्वक पाठ कर कार्य को प्रारम्भ करना चाहिए। इससे सभी बाधाएँ दूर होती हैं एवं कार्य पूरा होता है। जो लोग **वृहत् धार्मिक अनुष्ठान** आदि करना चाहते हों, वे भी पहले इसका पाठ कर **अनुष्ठान** करेंगे, तो बाधाएँ दूर होंगी और **अनुष्ठान** सफल होगा।

-सम्पादक

सर्व-सिद्धि-प्रद

ब्रह्माण्ड-पावन श्रीकृष्ण-कवच

।।ब्रह्मोवाच।।

राधाकान्त महा-भाग! कवचं यत् प्रकाशितं।
ब्रह्माण्ड-पावनं नाम, कृपया कथय प्रभो!।।१
मां महेशं च धर्मं च, भक्तं च भक्त-वत्सल।
त्वत्-प्रसादेन पुत्रेभ्यो, दास्यामि भक्ति-संयुतः।।२

ब्रह्माजी बोले— हे महा-भाग! राधा-वल्लभ! प्रभो! **'ब्रह्माण्ड-पावन'** नामक जो कवच आपने प्रकाशित किया है, उसका उपदेश कृपा-पूर्वक मुझको, महा-देव जी को तथा धर्म को दीजिए। हे भक्त-वत्सल! हम तीनों आपके भक्त हैं। आपकी कृपा से मैं अपने पुत्रों को भक्ति-पूर्वक इसका उपदेश दूँगा।।१-२

।।श्रीकृष्ण उवाच।।

शृणु वक्ष्यामि ब्रह्मेश! धर्मेदं कवचं परं।
अहं दास्यामि युष्मभ्यं, गोपनीयं सुदुर्लभम्।।१
यस्मै कस्मै न दातव्यं, प्राण-तुल्यं ममैव हि।
यत्-तेजो मम देहेऽस्ति, तत्-तेजः कवचेऽपि च।।२

श्रीकृष्ण ने कहा— हे ब्रह्मन्! महेश्वर! धर्म! तुम लोग सुनो! मैं इस उत्तम 'कवच' का वर्णन कर रहा हूँ। यह परम दुर्लभ और गोपनीय है। इसे जिस किसी को भी न देना, यह मेरे लिए प्राणों के समान है। जो तेज मेरे शरीर में है, वही इस **'कवच'** में भी है।

कुरु सृष्टिमिमं धृत्वा, धाता त्रि- जगतां भव।
संहर्त्ता भव हे शम्भो! मम तुल्यो भवे भव।।३
हे धर्म! त्वमिमं धृत्वा, भव साक्षी च कर्मणां।
तपसां फल - दाता च, यूयं भक्त मद्-वरात्।।४

हे ब्रह्मन्! तुम इस **'कवच'** को धारण करके सृष्टि करो और तीनों लोकों के विधाता के पद पर प्रतिष्ठित रहो। हे शम्भो! तुम भी इस कवच को ग्रहण कर संहार का कार्य सम्पन्न करो और संसार में मेरे समान शक्ति-शाली हो जाओ। हे धर्म! तुम इस कवच को धारण कर कर्मों के साक्षी बने रहो। तुम सब लोग मेरे वर से तपस्या के फल-दाता हो जाओ।

ब्रह्माण्ड-पावनस्यास्य, कवचस्य हरिः स्वयं।
ऋषिश्छन्दश्च गायत्री, देवोऽहं जगदीश्वर!।।५
धर्मार्थ-काम-मोक्षेषु, विनियोगः प्रकीर्तितः।
त्रि-लक्ष-वार-पठनात्, सिद्धिदं कवचं विधे!।।६

इस **'ब्रह्माण्ड-पावन' कवच** के **ऋषि** स्वयं हरि हैं, **छन्द** गायत्री है, **देवता** मैं जगदीश्वर श्रीकृष्ण हूँ तथा इसका विनियोग धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष हेतु है। हे विधे! ३ लाख बार **'पाठ'** करने पर यह **'कवच'** सिद्ध हो जाता है।

यो भवेत् सिद्ध-कवचो, मम तुल्यो भवेत्तु सः।
तेजसा सिद्धि - योगेन, ज्ञानेन विक्रमेण च।।७

जो इस **'कवच'** को सिद्ध कर लेता है, वह **तेज, सिद्धियों, योग, ज्ञान और बल-पराक्रम** में मेरे समान हो जाता है।

।।मूल कवच-पाठ।।

विनियोग— **ॐ अस्य श्रीब्रह्माण्ड-पावन-कवचस्य श्रीहरिः ऋषिः, गायत्री छन्दः, श्रीकृष्णो देवता, धर्म-अर्थ-काम-मोक्षेषु विनियोगः।**

ऋष्यादि-न्यास— श्रीहरि-ऋषये नमः शिरसि, गायत्री-छन्दसे नमः मुखे, श्रीकृष्ण-देवतायै नमः हृदये, धर्म-अर्थ-काम-मोक्षेषु जपे विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे।

प्रणवो मे शिरः पातु, नमो रासेश्वराय च।
भालं पायान् नेत्र-युग्मं, नमो राधेश्वराय च॥१

कृष्णः पायात् श्रोत्र-युग्मं, हे हरे घ्राणमेव च।
जिह्विकां वह्निजाया तु, कृष्णायेति च सर्वतः॥२

श्रीकृष्णाय स्वाहेति च, कण्ठं पातु षडक्षरः।
ह्रीं कृष्णाय नमो वक्त्रं, क्लीं पूर्वश्च भुज-द्वयम्॥३

नमो गोपाङ्गनेशाय, स्कन्धावष्टाक्षरोऽवतु।
दन्त-पंक्तिमोष्ठ-युग्मं, नमो गोपीश्वराय च॥४

ॐ नमो भगवते रास - मण्डलेशाय स्वाहा।
स्वयं वक्षःस्थलं पातु, मन्त्रोऽयं षोड़शाक्षरः॥५

ऐं कृष्णाय स्वाहेति च, कर्ण-युग्मं सदाऽवतु।
ॐ विष्णवे स्वाहेति च, कङ्कालं सर्वतोऽवतु॥६

ॐ हरये नमः इति, पृष्ठं पादं सदाऽवतु।
ॐ गोवर्द्धन - धारिणे, स्वाहा सर्व-शरीरकम्॥७

प्राच्यां मां पातु श्रीकृष्णः, आग्नेय्यां पातु माधवः।
दक्षिणे पातु गोपीशो, नैऋत्यां नन्द-नन्दनः॥८

वारुण्यां पातु गोविन्दो, वायव्यां राधिकेश्वरः।
उत्तरे पातु रासेशः, ऐशान्यामच्युतः स्वयम्।
सन्ततं सर्वतः पातु, परो नारायणः स्वयं॥९

॥फल-श्रुति॥

इति ते कथितं ब्रह्मन्! कवचं परमाद्भुतं।
मम जीवन-तुल्यं च, युष्मभ्यं दत्तमेव च॥

अर्थात् हे ब्रह्मन्! इस प्रकार परम अद्भुत **'कवच'** का मैंने वर्णन किया है। यह मेरे जीवन के तुल्य है। इसे मैंने तुम लोगों को अर्पित किया है।

* * *

भगवान् श्रीकृष्ण-'नाम-मन्त्र'-साधना

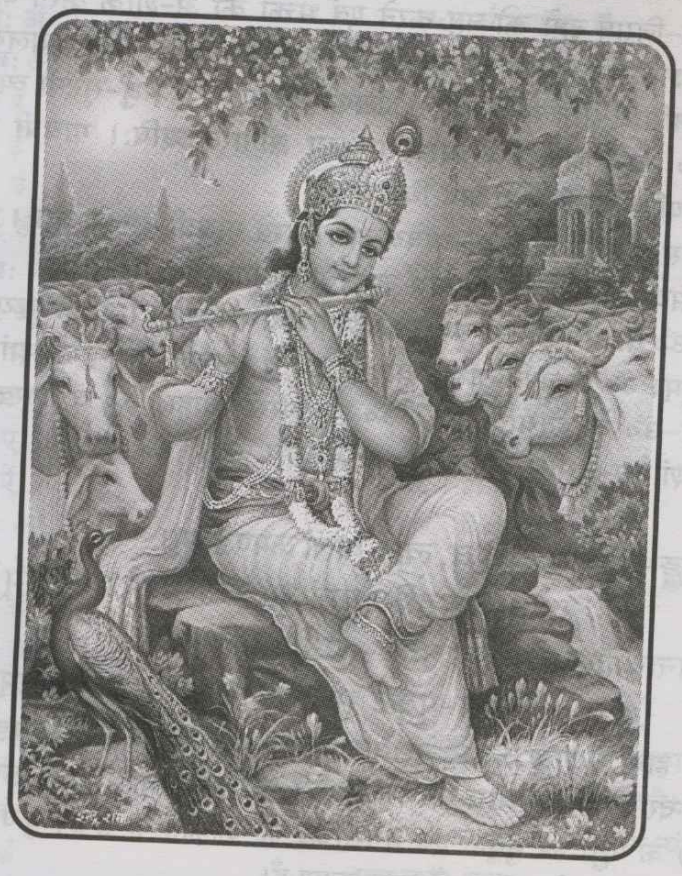

'श्रीमद्-भगवद्-गीता' में योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण के अनेक नामों का वर्णन है। ये सभी नाम अलौकिक और दिव्य गुणों से परिपूर्ण हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण के नामों का स्मरण भी एक साधना अर्थात् 'नाम-स्मरण-योग' है। इससे भगवान् कृष्ण की दिव्यता-'नाम-स्मरण' करनेवाले को सहज रूप से उपलब्ध हो जाती है।

यहाँ भगवान् श्रीकृष्ण के ६ दिव्य नामों-१. केशव, २. गोविन्द, ३. हृषीकेश, ४. जनार्दन, ५. माधव एवं ६. मधुसूदन की 'साधना' का विवरण 'विनियोग', 'ऋष्यादि' एवं 'वर्ण-माला' में 'जप' के विधान के साथ दिया जा रहा है।

आशा है कि साधक-बन्धु इससे लाभ उठाएँगे।

-सम्पादक

त्र्यक्षर-'श्रीकेशव'-नाम-साधना

नाम-माहात्म्य–जिसमें दुष्टों को नष्ट करने एवं भक्तों को अ-शोक करने की सामर्थ्य है, उसे 'केशव' कहते हैं–'केशव-पदेन केश्यादि दुष्ट-दैत्य-निबर्हणेन सर्वदा भक्तान् पालयसीत्यतो मामपि शोक-निवारणेन पालयिष्यसीति सूचितम्।' (देखिए, 'श्रीगीता' की मधु-सूदनी व्याख्या)

विनियोग–ॐ अस्य श्रीकेशव-त्र्यक्षर-मन्त्रस्य श्रीनारद ऋषिः। गायत्री छन्दः। श्रीकेशव देवता। मम सर्व-आपत्ति-विनाशनाय जपे विनियोगः।

ऋष्यादि-न्यास–शिरसि श्रीनारद-ऋषये नमः। मुखे गायत्री-छन्दसे नमः। हृदये श्रीकेशवाय देवतायै नमः। मम सर्व-आपत्ति-विनाशनाय जपे विनियोगाय नमः अञ्जलौ।

कर-न्यास–ॐ कें अंगुष्ठाभ्यां नमः। ॐ शं तर्जनीभ्यां स्वाहा। ॐ वं मध्यमाभ्यां वषट्। ॐ कें अनामिकाभ्यां हुम्। ॐ शं कनिष्ठाभ्यां वौषट्। ॐ वं करतल-कर-पृष्ठाभ्यां फट्।

षडङ्ग-न्यास–ॐ कें हृदयाय नमः। ॐ शं शिरसे स्वाहा। ॐ वं शिखायै वषट्। ॐ कें कवचाय हुम्। ॐ शं नेत्र-त्रयाय वौषट्। ॐ वं अस्त्राय फट्।

ध्यान–

शङ्ख-चक्रेऽसिः शूले च, त्वक्ष-मालां कमण्डलुम्।
भुजैष्षड्भिर्दधानं च, रक्त-वर्णं सत्कटिम्।।
अन्तर्बाह्योत्तरीयं च, नाग - यज्ञोपवीतिनम्।
मयूर-मुकुटं रम्यं, मकराकृति - कुण्डलम्।।

अर्थात् छः हाथों में शङ्ख, चक्र, तलवार, शूल, अक्ष-माला एवं कमण्डल धारण करनेवाले, रक्त-वर्ण वाले, अन्दर व बाहर उत्तरीय धारण करनेवाले, नाग को यज्ञोपवीत के रूप में धारण करनेवाले, सुन्दर मयूर (मोर) के पङ्खों का मुकुट एवं मगरमच्छ की आकृति के समान कुण्डल धारण करनेवाले अत्यन्त सम्माननीय भगवान् केशव का मैं ध्यान करता हूँ।

मानस-पूजा–

लं पृथिव्यात्मकं गन्धं श्रीकेशवाय समर्पयामि नमः।
हं आकाशात्मकं पुष्पं श्रीकेशवाय समर्पयामि नमः।
यं वाय्वात्मकं धूपं श्रीकेशवाय घ्रापयामि नमः।
रं वह्न्यात्मकं दीपं श्रीकेशवाय दर्शयामि नमः।
वं अमृतात्मकं नैवेद्यं श्रीकेशवाय निवेदयामि नमः।
सं सर्वात्मकं ताम्बूलं श्रीकेशवाय समर्पयामि नमः।

मन्त्र– केशवः (३ अक्षर)। दुष्टों को नष्ट करनेवाले एवं भक्तों को अशोक करनेवाले श्रीकेशव का मन-ही-मन ध्यान करते हुए 'वर्ण-माला' में इस त्र्यक्षर मन्त्र का जप आगे दी गई विधि के अनुसार करना चाहिए। यथा–

१. अं केशवः अं
२. आं केशवः आं
३. इं केशवः इं
४. ईं केशवः ईं
५. उं केशवः उं
६. ऊं केशवः ऊं
७. ऋं केशवः ऋं
८. ॠं केशवः ॠं
९. ऌं केशवः ऌं
१०. ॡं केशवः ॡं
११. एं केशवः एं
१२. ऐं केशवः ऐं
१३. ओं केशवः ओं
१४. औं केशवः औं
१५. अं केशवः अं
१६. अः केशवः अः
१७. कं केशवः कं
१८. खं केशवः खं
१९. गं केशवः गं
२०. घं केशवः घं
२१. ङं केशवः ङं
२२. चं केशवः चं
२३. छं केशवः छं
२४. जं केशवः जं
२५. झं केशवः झं
२६. ञं केशवः ञं
२७. टं केशवः टं
२८. ठं केशवः ठं
२९. डं केशवः डं
३०. ढं केशवः ढं
३१. णं केशवः णं
३२. तं केशवः तं
३३. थं केशवः थं
३४. दं केशवः दं
३५. धं केशवः धं
३६. नं केशवः नं
३७. पं केशवः पं
३८. फं केशवः फं
३९. बं केशवः बं
४०. भं केशवः भं
४१. मं केशवः मं
४२. यं केशवः यं
४३. रं केशवः रं
४४. लं केशवः लं
४५. वं केशवः वं
४६. शं केशवः शं
४७. षं केशवः षं
४८. सं केशवः सं
४९. हं केशवः हं
५०. ळं केशवः ळं

इसके बाद 'विलोम'-क्रम से 'ळं' से 'अं' तक (५१ से १०० तक) 'जप' करे। फिर 'अष्ट-मातृका-वर्णों' (अं-कं-चं-टं-तं-पं-यं-शं) से १०८ तक जप करे। यथा-

१०१. अं केशवः अं
१०२. कं केशवः कं
१०३. चं केशवः चं
१०४. टं केशवः टं
१०५. तं केशवः तं
१०६. पं केशवः पं
१०७. यं केशवः यं
१०८. शं केशवः शं

होम- यथा-शक्ति 'जप' करने के बाद मधुर-त्रय (घी, शहद, शक्कर) से होम करे, तो इह-लोक में सुख तथा पर-लोक में मोक्ष प्राप्त होता है।

षडक्षर-'श्रीगोविन्द'-नाम-साधना

नाम-माहात्म्य–जो 'गो' अर्थात् इन्द्रियों के अधिष्ठाता हैं, वे 'गोविन्द' कहलाते हैं–'गो-शब्द वाच्यानीन्द्रियाण्यधिष्ठानतया·····।' (देखिए, 'श्रीगीता' की मधु-सूदनी व्याख्या)।

विनियोग–ॐ अस्य श्रीगोविन्द-षडक्षर-मन्त्रस्य श्रीशौनक ऋषिः। विराट् छन्दः। श्रीगोविन्द देवता। मम सकल-कष्ट-रोग-परिहार्थं जपे विनियोगः।

ऋष्यादि-न्यास–शिरसि श्रीशौनक-ऋषये नमः। मुखे विराट्-छन्दसे नमः। हृदये श्रीगोविन्दाय देवतायै नमः। मम सकल-कष्ट-रोग-परिहार्थं जपे विनियोगाय नमः अञ्जलौ।

कर-न्यास–गो अंगुष्ठाभ्यां नमः। वि तर्जनीभ्यां स्वाहा। न्दा मध्यमाभ्यां वषट्। य अनामिकाभ्यां हुम्। न कनिष्ठाभ्यां वौषट्। मः करतल-कर-पृष्ठाभ्यां फट्।

षडङ्ग-न्यास–गो हृदयाय नमः। वि शिरसे स्वाहा। न्दा शिखायै वषट्। य कवचाय हुम्। न नेत्र-त्रयाय वौषट्। मः अस्त्राय फट्।

ध्यान–

शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म-धरं ध्यायेत् किरीटिनम्।
गरुडोपरि-संस्थं च, सनकाद्यैरुपासितम्।।
लक्ष्मी-धराभ्यां सहितमुद्यदादित्य-कुण्डलम्।
लोक-रक्षा-करं दिव्यं, दिव्य-माल्यानुलेपनम्।।

अर्थात् लक्ष्मी, पृथ्वी एवं सूर्य के घेरे के साथ सभी लोकों की रक्षा करनेवाले, दिव्य आभूषणों से देदीप्यमान, सनकादि मुनियों द्वारा उपासित, गरुड़ पर सवार, चार हाथों में शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म को धारण करनेवाले, रत्न-मुकुट-धारी भगवान् गोविन्द का मैं ध्यान करता हूँ।

मानस-पूजा–

लं पृथिव्यात्मकं गन्धं श्रीगोविन्दाय समर्पयामि नमः।
हं आकाशात्मकं पुष्पं श्रीगोविन्दाय समर्पयामि नमः।
यं वाय्वात्मकं धूपं श्रीगोविन्दाय घ्रापयामि नमः।
रं वह्न्यात्मकं दीपं श्रीगोविन्दाय दर्शयामि नमः।
वं अमृतात्मकं नैवेद्यं श्रीगोविन्दाय निवेदयामि नमः।
सं सर्वात्मकं ताम्बूलं श्रीगोविन्दाय समर्पयामि नमः।

मन्त्र– गोविन्दाय नमः (६ अक्षर)। इन्द्रियों के अधिष्ठाता आनन्द-मय भगवान् श्रीगोविन्द का मन-ही-मन ध्यान करते हुए 'वर्ण-माला' में इस षडक्षर मन्त्र का जप आगे दी गई विधि के अनुसार करना चाहिए। यथा–

१. अं गोविन्दाय नमः अं
२. आं गोविन्दाय नमः आं
३. इं गोविन्दाय नमः इं
४. ईं गोविन्दाय नमः ईं
५. उं गोविन्दाय नमः उं
६. ऊं गोविन्दाय नमः ऊं
७. ऋं गोविन्दाय नमः ऋं
८. ॠं गोविन्दाय नमः ॠं
९. ऌं गोविन्दाय नमः ऌं
१०. ॡं गोविन्दाय नमः ॡं
११. एं गोविन्दाय नमः एं
१२. ऐं गोविन्दाय नमः ऐं
१३. ओं गोविन्दाय नमः ओं
१४. औं गोविन्दाय नमः औं
१५. अं गोविन्दाय नमः अं
१६. अः गोविन्दाय नमः अः
१७. कं गोविन्दाय नमः कं
१८. खं गोविन्दाय नमः खं
१९. गं गोविन्दाय नमः गं
२०. घं गोविन्दाय नमः घं
२१. ङं गोविन्दाय नमः ङं
२२. चं गोविन्दाय नमः चं
२३. छं गोविन्दाय नमः छं
२४. जं गोविन्दाय नमः जं
२५. झं गोविन्दाय नमः झं
२६. ञं गोविन्दाय नमः ञं
२७. टं गोविन्दाय नमः टं
२८. ठं गोविन्दाय नमः ठं
२९. डं गोविन्दाय नमः डं
३०. ढं गोविन्दाय नमः ढं
३१. णं गोविन्दाय नमः णं
३२. तं गोविन्दाय नमः तं
३३. थं गोविन्दाय नमः थं
३४. दं गोविन्दाय नमः दं
३५. धं गोविन्दाय नमः धं
३६. नं गोविन्दाय नमः नं
३७. पं गोविन्दाय नमः पं
३८. फं गोविन्दाय नमः फं
३९. बं गोविन्दाय नमः बं
४०. भं गोविन्दाय नमः भं
४१. मं गोविन्दाय नमः मं
४२. यं गोविन्दाय नमः यं
४३. रं गोविन्दाय नमः रं
४४. लं गोविन्दाय नमः लं
४५. वं गोविन्दाय नमः वं
४६. शं गोविन्दाय नमः शं
४७. षं गोविन्दाय नमः षं
४८. सं गोविन्दाय नमः सं
४९. हं गोविन्दाय नमः हं
५०. ळं गोविन्दाय नमः ळं

इसके बाद 'विलोम'-क्रम से 'ळं' से 'अं' तक (५१ से १०० तक) 'जप' करे। फिर 'अष्ट-मातृका-वर्णों' (अं-कं-चं-टं-तं-पं-यं-शं) से १०१ से १०८ तक 'जप' करे। यथा-

१०१. अं गोविन्दाय नमः अं
१०२. कं गोविन्दाय नमः कं
१०३. चं गोविन्दाय नमः चं
१०४. टं गोविन्दाय नमः टं
१०५. तं गोविन्दाय नमः तं
१०६. पं गोविन्दाय नमः पं
१०७. यं गोविन्दाय नमः यं
१०८. शं गोविन्दाय नमः शं

होम- यथा-शक्ति 'जप' करने के बाद घृत से होम करें, तो सभी प्रकार के 'रोग' एवं 'कष्टों' का निवारण होता है।

अष्टाक्षर-'श्रीहृषीकेश'-नाम-साधना

नाम-माहात्म्य–जो सबकी इन्द्रियों के प्रवर्त्तक हैं, जो सबके अन्तः-करण को जाननेवाले हैं, उन्हें '**हृषीकेश**' कहते हैं–'**हृषीकेशं सर्वेषामिन्द्रियाणां प्रवर्त्तकत्वेन पर-चित्ताभिज्ञम्।**' (देखिए, '**श्रीगीता**' की **मधु-सूदनी** व्याख्या)।

विनियोग–**ॐ अस्य श्रीहृषीकेश-अष्टाक्षर-मन्त्रस्य श्रीब्रह्मा ऋषिः। अनुष्टुप् छन्दः। श्री हृषीकेश देवता। मम सर्व-कामना-सिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।**

ऋष्यादि-न्यास–**शिरसि श्रीब्रह्मा-ऋषये नमः। मुखे अनुष्टुप्-छन्दसे नमः। हृदये श्रीहृषीकेशाय देवतायै नमः। मम सर्व-कामना-सिद्ध्यर्थे जपे विनियोगाय नमः अञ्जलौ।**

कर-न्यास–**क्लां अंगुष्ठाभ्यां नमः। क्लीं तर्जनीभ्यां स्वाहा। क्लूं मध्यमाभ्यां वषट्। क्लैं अनामिकाभ्यां हुम्। क्लौं कनिष्ठाभ्यां वौषट्। क्लः करतल-कर-पृष्ठाभ्यां फट्।**

षडङ्ग-न्यास–**क्लां हृदयाय नमः। क्लीं शिरसे स्वाहा। क्लूं शिखायै वषट्। क्लैं कवचाय हुम्। क्लौं नेत्र-त्रयाय वौषट्। क्लः अस्त्राय फट्।**

ध्यान–

शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म-धारिणं संस्मरेद् विभुं।
गरुडोपरि-संविष्टं, शुभ्र-वर्णं सु-भूषणम्।।

अर्थात् **शङ्ख, चक्र, गदा** एवं **पद्म** धारण करनेवाले, **गरुड़** पर सवार, सुन्दर आभूषणों से शोभायमान, **श्वेत** वर्णवाले **भगवान् श्रीहृषीकेश** का मैं ध्यान करता हूँ।

मानस-पूजा–

लं पृथिव्यात्मकं गन्धं श्रीहृषीकेशाय समर्पयामि नमः।
हं आकाशात्मकं पुष्पं श्रीहृषीकेशाय समर्पयामि नमः।
यं वाय्वात्मकं धूपं श्रीहृषीकेशाय घ्रापयामि नमः।
रं वह्न्यात्मकं दीपं श्रीहृषीकेशाय दर्शयामि नमः।
वं अमृतात्मकं नैवेद्यं श्रीहृषीकेशाय निवेदयामि नमः।
सं सर्वात्मकं ताम्बूलं श्रीहृषीकेशाय समर्पयामि नमः।

मन्त्र– **क्लीं हृषीकेशाय नमः** (८ अक्षर)। इन्द्रियों के प्रवर्त्तक, अन्तःकरण को जाननेवाले, आत्मा को अज्ञान से मुक्त करनेवाले **भगवान् श्रीहृषीकेश** का मन-ही-मन ध्यान करते हुए '**वर्ण-माला**' में इस **अष्टाक्षर मन्त्र** का **जप** आगे दी गई विधि के अनुसार करना चाहिए। यथा–

१. अं क्लीं हृषीकेशाय नमः अं
२. आं क्लीं हृषीकेशाय नमः आं
३. इं क्लीं हृषीकेशाय नमः इं
४. ईं क्लीं हृषीकेशाय नमः ईं
५. उं क्लीं हृषीकेशाय नमः उं
६. ऊं क्लीं हृषीकेशाय नमः ऊं
७. ऋं क्लीं हृषीकेशाय नमः ऋं
८. ॠं क्लीं हृषीकेशाय नमः ॠं
९. ऌं क्लीं हृषीकेशाय नमः ऌं
१०. ॡं क्लीं हृषीकेशाय नमः ॡं
११. एं क्लीं हृषीकेशाय नमः एं
१२. ऐं क्लीं हृषीकेशाय नमः ऐं
१३. ओं क्लीं हृषीकेशाय नमः ओं
१४. औं क्लीं हृषीकेशाय नमः औं
१५. अं क्लीं हृषीकेशाय नमः अं
१६. अः क्लीं हृषीकेशाय नमः अः
१७. कं क्लीं हृषीकेशाय नमः कं
१८. खं क्लीं हृषीकेशाय नमः खं
१९. गं क्लीं हृषीकेशाय नमः गं
२०. घं क्लीं हृषीकेशाय नमः घं
२१. ङं क्लीं हृषीकेशाय नमः ङं
२२. चं क्लीं हृषीकेशाय नमः चं
२३. छं क्लीं हृषीकेशाय नमः छं
२४. जं क्लीं हृषीकेशाय नमः जं
२५. झं क्लीं हृषीकेशाय नमः झं
२६. ञं क्लीं हृषीकेशाय नमः ञं
२७. टं क्लीं हृषीकेशाय नमः टं
२८. ठं क्लीं हृषीकेशाय नमः ठं
२९. डं क्लीं हृषीकेशाय नमः डं
३०. ढं क्लीं हृषीकेशाय नमः ढं
३१. णं क्लीं हृषीकेशाय नमः णं
३२. तं क्लीं हृषीकेशाय नमः तं
३३. थं क्लीं हृषीकेशाय नमः थं
३४. दं क्लीं हृषीकेशाय नमः दं
३५. धं क्लीं हृषीकेशाय नमः धं
३६. नं क्लीं हृषीकेशाय नमः नं
३७. पं क्लीं हृषीकेशाय नमः पं
३८. फं क्लीं हृषीकेशाय नमः फं
३९. बं क्लीं हृषीकेशाय नमः बं
४०. भं क्लीं हृषीकेशाय नमः भं
४१. मं क्लीं हृषीकेशाय नमः मं
४२. यं क्लीं हृषीकेशाय नमः यं
४३. रं क्लीं हृषीकेशाय नमः रं
४४. लं क्लीं हृषीकेशाय नमः लं
४५. वं क्लीं हृषीकेशाय नमः वं
४६. शं क्लीं हृषीकेशाय नमः शं
४७. षं क्लीं हृषीकेशाय नमः षं
४८. सं क्लीं हृषीकेशाय नमः सं
४९. हं क्लीं हृषीकेशाय नमः हं
५०. ळं क्लीं हृषीकेशाय नमः ळं

इसके बाद 'विलोम'-क्रम से 'ळं' से 'अं' तक (५१ से १०० तक) 'जप' करे। फिर 'अष्ट-मातृका-वर्णों' (अं-कं-चं-टं-तं-पं-यं-शं) से १०१ से १०८ तक 'जप' करे। यथा-

१०१. अं क्लीं हृषीकेशाय नमः अं
१०२. कं क्लीं हृषीकेशाय नमः कं
१०३. चं क्लीं हृषीकेशाय नमः चं
१०४. टं क्लीं हृषीकेशाय नमः टं
१०५. तं क्लीं हृषीकेशाय नमः तं
१०६. पं क्लीं हृषीकेशाय नमः पं
१०७. यं क्लीं हृषीकेशाय नमः यं
१०८. शं क्लीं हृषीकेशाय नमः शं

होम- यथा-शक्ति 'जप' करने के बाद घृत-युक्त कमल के पुष्पों से 'होम' करे, तो सभी कामनाओं की पूर्ति होती है।

अष्टाक्षर-'श्रीजनार्दन'-नाम-साधना

नाम-माहात्म्य-जो जन्म का अर्दन (विनाश) करते हैं, वही 'जनार्दन' हैं-'जनो जन्म, तमर्दयतीति जनार्दनः।' (पाणिनि ३/१/१३४)। जो मनुष्यों के द्वारा प्रार्थित हैं, जो मनुष्यों की प्रार्थना को पूर्ण करनेवाले हैं, उन्हें 'जनार्दन' कहते हैं-'जनैरर्द्यत इति वा। अर्द गतौ याचने च, कृत्य लुटः इति कर्मणि ल्युट्' (पाणिनि ३/१/१३३)।

विनियोग-ॐ अस्य श्रीजनार्दन-अष्टाक्षर-मन्त्रस्य श्रीब्रह्मा ऋषिः। अनुष्टुप् छन्दः। श्रीजनार्दन देवता। मम सर्व-कामना-सिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

ऋष्यादि-न्यास-शिरसि श्रीब्रह्मा-ऋषये नमः। मुखे अनुष्टुप्-छन्दसे नमः। हृदये श्रीजनार्दनाय देवतायै नमः। मम सर्व-कामना-सिद्ध्यर्थे जपे विनियोगाय नमः अञ्जलौ।

कर-न्यास-ॐ क्रुद्धोल्काय नमः अंगुष्ठाभ्यां नमः। ॐ महोल्काय नमः तर्जनीभ्यां स्वाहा। ॐ वीरोल्काय नमः मध्यमाभ्यां वषट्। ॐ द्युल्काय नमः अनामिकाभ्यां हुम्। ॐ सहस्रोल्काय नमः करतल-कर-पृष्ठाभ्यां फट्।

षडङ्ग-न्यास-ॐ क्रुद्धोल्काय नमः हृदयाय नमः। ॐ महोल्काय नमः शिरसे स्वाहा। ॐ वीरोल्काय नमः शिखायै वषट्। ॐ द्युल्काय नमः कवचाय हुम्। ॐ सहस्रोल्काय नमः अस्त्राय फट्।

ध्यान-

वराभये चक्र-गदे, दधतं पीत-वाससं।
आलिङ्गितं च रमया, नारदाद्यैरभिष्टुतम् ।।

अर्थात् पीले वस्त्र धारण करनेवाले, वर-अभय एवं चक्र-गदा धारण करनेवाले, रमा द्वारा आलिङ्गित, नारद आदि मुनियों द्वारा पूजित भगवान् श्रीजनार्दन का मैं ध्यान करता हूँ।

मानस-पूजा-

लं पृथिव्यात्मकं गन्धं श्रीजनार्दनाय समर्पयामि नमः।
हं आकाशात्मकं पुष्पं श्रीजनार्दनाय समर्पयामि नमः।
यं वाय्वात्मकं धूपं श्रीजनार्दनाय घ्रापयामि नमः।
रं वह्न्यात्मकं दीपं श्रीजनार्दनाय दर्शयामि नमः।
वं अमृतात्मकं नैवेद्यं श्रीजनार्दनाय निवेदयामि नमः।
सं सर्वात्मकं ताम्बूलं श्रीजनार्दनाय समर्पयामि नमः।

मन्त्र- जं जनार्दनाय नमः (८ अक्षर)। सभी प्रकार की कामनाओं को पूर्ण करनेवाले, वर-अभय-चक्र एवं गदा-धारी भगवान् श्रीजनार्दन का मन-ही-मन ध्यान करते हुए 'वर्ण-माला' में इस अष्टाक्षर मन्त्र का जप आगे दी गई विधि के अनुसार करना चाहिए। यथा-

१. अं जं जनार्दनाय नमः अं
२. आं जं जनार्दनाय नमः आं
३. इं जं जनार्दनाय नमः इं
४. ईं जं जनार्दनाय नमः ईं
५. उं जं जनार्दनाय नमः उं
६. ऊं जं जनार्दनाय नमः ऊं
७. ऋं जं जनार्दनाय नमः ऋं
८. ॠं जं जनार्दनाय नमः ॠं
९. ऌं जं जनार्दनाय नमः ऌं
१०. ॡं जं जनार्दनाय नमः ॡं
११. एं जं जनार्दनाय नमः एं
१२. ऐं जं जनार्दनाय नमः ऐं
१३. ओं जं जनार्दनाय नमः ओं
१४. औं जं जनार्दनाय नमः औं
१५. अं जं जनार्दनाय नमः अं
१६. अः जं जनार्दनाय नमः अः
१७. कं जं जनार्दनाय नमः कं
१८. खं जं जनार्दनाय नमः खं
१९. गं जं जनार्दनाय नमः गं
२०. घं जं जनार्दनाय नमः घं
२१. ङं जं जनार्दनाय नमः ङं
२२. चं जं जनार्दनाय नमः चं
२३. छं जं जनार्दनाय नमः छं
२४. जं जं जनार्दनाय नमः जं
२५. झं जं जनार्दनाय नमः झं
२६. ञं जं जनार्दनाय नमः ञं
२७. टं जं जनार्दनाय नमः टं
२८. ठं जं जनार्दनाय नमः ठं
२९. डं जं जनार्दनाय नमः डं
३०. ढं जं जनार्दनाय नमः ढं
३१. णं जं जनार्दनाय नमः णं
३२. तं जं जनार्दनाय नमः तं
३३. थं जं जनार्दनाय नमः थं
३४. दं जं जनार्दनाय नमः दं
३५. धं जं जनार्दनाय नमः धं
३६. नं जं जनार्दनाय नमः नं
३७. पं जं जनार्दनाय नमः पं
३८. फं जं जनार्दनाय नमः फं
३९. बं जं जनार्दनाय नमः बं
४०. भं जं जनार्दनाय नमः भं
४१. मं जं जनार्दनाय नमः मं
४२. यं जं जनार्दनाय नमः यं
४३. रं जं जनार्दनाय नमः रं
४४. लं जं जनार्दनाय नमः लं
४५. वं जं जनार्दनाय नमः वं
४६. शं जं जनार्दनाय नमः शं
४७. षं जं जनार्दनाय नमः षं
४८. सं जं जनार्दनाय नमः सं
४९. हं जं जनार्दनाय नमः हं
५०. ळं जं जनार्दनाय नमः ळं

इसके बाद 'विलोम'-क्रम से 'ळं' से 'अं' तक (५१ से १०० तक) 'जप' करे। फिर 'अष्ट-मातृका-वर्णों' (अं-कं-चं-टं-तं-पं-यं-शं) से १०१ से १०८ तक 'जप' करे। यथा-

१०१. अं जं जनार्दनाय नमः अं
१०२. कं जं जनार्दनाय नमः कं
१०३. चं जं जनार्दनाय नमः चं
१०४. टं जं जनार्दनाय नमः टं
१०५. तं जं जनार्दनाय नमः तं
१०६. पं जं जनार्दनाय नमः पं
१०७. यं जं जनार्दनाय नमः यं
१०८. शं जं जनार्दनाय नमः शं

होम- यथा-शक्ति 'जप' करने के बाद 'घृत' से 'होम' करे, तो सभी कामनाएँ पूरी होती हैं।

द्वादशाक्षर-'श्री माधव'-नाम-साधना

नाम-माहात्म्य-'**माधव**' अर्थात् **लक्ष्मी-पति** (मा = लक्ष्मी, धव = पति)। संस्कृत-वाङ्मय में '**मा**'-शब्द के अनेक अर्थ हैं। '**माङ्**' मानने से '**मा**' का अर्थ है-**मान, ज्ञान**। '**मा**'-शब्द का प्रयोग निषेधात्मक-रूप में भी होता है। '**माधव**'-शब्द में आगत '**मा**' को यदि निषेधात्मक-रूप में ग्रहण करें, तो इसका अर्थ होता है-'**जो सबके पति-जगत्पति हैं, सर्वज्ञ हैं, सर्वेश्वर हैं।**'

विनियोग-**ॐ अस्य श्रीमाधव-द्वादशाक्षर-मन्त्रस्य श्रीनारद ऋषिः। विराट् छन्दः। श्रीमाधव देवता। मम दीर्घायु-शरीरारोग्य-लक्ष्मी-फल-प्राप्त्यर्थे जपे विनियोगः।**

ऋष्यादि-न्यास-**शिरसि श्रीनारद-ऋषये नमः। मुखे विराट्-छन्दसे नमः। हृदये श्रीमाधवाय देवतायै नमः। मम दीर्घायु-शरीरारोग्य-लक्ष्मी-फल-प्राप्त्यर्थे जपे विनियोगाय नमः अञ्जलौ।**

कर-न्यास-**ॐ रमां अंगुष्ठाभ्यां नमः। ॐ बिन्दु तर्जनीभ्यां स्वाहा। ॐ माधवाय मध्यमाभ्यां वषट्। ॐ नमो अनामिकाभ्यां हुम्। ॐ नमः करतल-कर-पृष्ठाभ्यां फट्।**

षडङ्ग-न्यास-**ॐ रमां हृदयाय नमः। ॐ बिन्दु शिरसे स्वाहा। ॐ माधवाय शिखायै वषट्। ॐ नमो कवचाय हुम्। ॐ नमः अस्त्राय फट्।**

ध्यान-

शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म-धरं पीताम्बरावृतम्।
बद्धाञ्जली रमा वामे, वादयन्ती च वल्लकीम्।।
नारदस्तुम्बुरुर्दक्ष - भागे तैरपि संयुतम्।
प्रसन्न - वदनं ध्यायेद्, वर - दान - समुद्यतम्।।

अर्थात् **प्रसन्न मुखवाले, वर-दान देने में तत्पर, पीताम्बर धारण किए हुए, शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म-धारी उन भगवान् श्रीमाधव** का मैं ध्यान करता हूँ, जिनके बाँएँ कर-बद्ध **भगवती लक्ष्मी** व वीणा-सहित **भगवती सरस्वती** तथा दाँएँ **नारद** व **तुम्बुरु** ऋषि हैं।

मानस-पूजा-

लं पृथिव्यात्मकं गन्धं श्रीमाधवाय समर्पयामि नमः।
हं आकाशात्मकं पुष्पं श्रीमाधवाय समर्पयामि नमः।
यं वाय्वात्मकं धूपं श्रीमाधवाय घ्रापयामि नमः।
रं वह्न्यात्मकं दीपं श्रीमाधवाय दर्शयामि नमः।
वं अमृतात्मकं नैवेद्यं श्रीमाधवाय निवेदयामि नमः।
सं सर्वात्मकं ताम्बूलं श्रीमाधवाय समर्पयामि नमः।

मन्त्र- **रमां बिन्दु-माधवाय नमो नमः।** (१२ अक्षर)। सर्वज्ञ, सर्वेश्वर, लक्ष्मी-पति, माया-मय भगवान् **श्रीमाधव** का मन-ही-मन ध्यान करते हुए '**वर्ण-माला**' में इस **द्वादशाक्षर मन्त्र** का **जप** आगे दी गई विधि के अनुसार करना चाहिए। यथा-

१. अं रमां बिन्दु-माधवाय नमो नमः अं
२. आं रमां बिन्दु-माधवाय नमो नमः आं
३. इं रमां बिन्दु-माधवाय नमो नमः इं
४. ईं रमां बिन्दु-माधवाय नमो नमः ईं
५. उं रमां बिन्दु-माधवाय नमो नमः उं
६. ऊं रमां बिन्दु-माधवाय नमो नमः ऊं
७. ऋं रमां बिन्दु-माधवाय नमो नमः ऋं
८. ॠं रमां बिन्दु-माधवाय नमो नमः ॠं
९. ऌं रमां बिन्दु-माधवाय नमो नमः ऌं
१०. ॡं रमां बिन्दु-माधवाय नमो नमः ॡं
११. एं रमां बिन्दु-माधवाय नमो नमः एं
१२. ऐं रमां बिन्दु-माधवाय नमो नमः ऐं
१३. ओं रमां बिन्दु-माधवाय नमो नमः ओं
१४. औं रमां बिन्दु-माधवाय नमो नमः औं
१५. अं रमां बिन्दु-माधवाय नमो नमः अं
१६. अः रमां बिन्दु-माधवाय नमो नमः अः
१७. कं रमां बिन्दु-माधवाय नमो नमः कं
१८. खं रमां बिन्दु-माधवाय नमो नमः खं
१९. गं रमां बिन्दु-माधवाय नमो नमः गं
२०. घं रमां बिन्दु-माधवाय नमो नमः घं
२१. ङं रमां बिन्दु-माधवाय नमो नमः ङं
२२. चं रमां बिन्दु-माधवाय नमो नमः चं
२३. छं रमां बिन्दु-माधवाय नमो नमः छं
२४. जं रमां बिन्दु-माधवाय नमो नमः जं
२५. झं रमां बिन्दु-माधवाय नमो नमः झं
२६. ञं रमां बिन्दु-माधवाय नमो नमः ञं
२७. टं रमां बिन्दु-माधवाय नमो नमः टं
२८. ठं रमां बिन्दु-माधवाय नमो नमः ठं
२९. डं रमां बिन्दु-माधवाय नमो नमः डं
३०. ढं रमां बिन्दु-माधबाय नमो नमः ढं
३१. णं रमां बिन्दु-माधवाय नमो नमः णं
३२. तं रमां बिन्दु-माधवाय नमो नमः तं
३३. थं रमां बिन्दु-माधवाय नमो नमः थं
३४. दं रमां बिन्दु-माधवाय नमो नमः दं
३५. धं रमां बिन्दु-माधवाय नमो नमः धं
३६. नं रमां बिन्दु-माधवाय नमो नमः नं
३७. पं रमां बिन्दु-माधवाय नमो नमः पं
३८. फं रमां बिन्दु-माधवाय नमो नमः फं
३९. बं रमां बिन्दु-माधवाय नमो नमः बं
४०. भं रमां बिन्दु-माधवाय नमो नमः भं
४१. मं रमां बिन्दु-माधवाय नमो नमः मं
४२. यं रमां बिन्दु-माधवाय नमो नमः यं
४३. रं रमां बिन्दु-माधवाय नमो नमः रं
४४. लं रमां बिन्दु-माधवाय नमो नमः लं
४५. वं रमां बिन्दु-माधवाय नमो नमः वं
४६. शं रमां बिन्दु-माधवाय नमो नमः शं
४७. षं रमां बिन्दु-माधवाय नमो नमः षं
४८. सं रमां बिन्दु-माधवाय नमो नमः सं
४९. हं रमां बिन्दु-माधवाय नमो नमः हं
५०. ळं रमां बिन्दु-माधवाय नमो नमः ळं

इसके बाद 'विलोम'-क्रम से 'ळं' से 'अं' तक (५१ से १०० तक) 'जप' करे। फिर 'अष्ट-मातृका-वर्णों' (अं-कं-चं-टं-तं-पं-यं-शं) से १०१ से १०८ तक 'जप' करे। यथा-

१०१. अं रमां बिन्दु-माधवाय नमो नमः अं
१०२. कं रमां बिन्दु-माधवाय नमो नमः कं
१०३. चं रमां बिन्दु-माधवाय नमो नमः चं
१०४. टं रमां बिन्दु-माधवाय नमो नमः टं
१०५. तं रमां बिन्दु-माधवाय नमो नमः तं
१०६. पं रमां बिन्दु-माधवाय नमो नमः पं
१०७. यं रमां बिन्दु-माधवाय नमो नमः यं
१०८. शं रमां बिन्दु-माधवाय नमो नमः शं

होम- यथा-शक्ति 'जप' करने के बाद 'घृत' से 'होम' करे, तो शान्त्यादि-गुणों के साथ धन-वैभव की प्राप्ति होती है और अन्त में मुक्ति प्राप्त होती है।

त्रयोदशाक्षर-'श्री मधुसूदन'-नाम-साधना

नाम-माहात्म्य-'**मधुसूदन**' अर्थात् '**मधु-कैटभ**' का विनाश करनेवाले। '**मधु-सूदन**' नाम से **वैदिक मार्ग-प्रवर्त्तकत्त्व** की सूचना भी मिलती है-'**मधु-सूदनेति सम्बोधयन् भगवतः वैदिक-मार्ग-प्रवर्त्तकत्त्वं सूचयति।**' '**मधु**' का अर्थ **भोगैषणा** भी है। अतः मधु-सूदन का अर्थ है-**जो भोग-प्रधान सांसारिक प्रवृत्तियों को नष्ट करते हैं।**

विनियोग-**ॐ अस्य श्रीमधुसूदन-त्रयोदशाक्षर-मन्त्रस्य श्रीब्रह्मा ऋषिः।अनुष्टुप् छन्दः। श्रीमधुसूदन देवता। मम दीर्घायु-शरीरारोग्य-लक्ष्मी-फल-प्राप्त्यर्थे जपे विनियोगः।**

ऋष्यादि-न्यास-**शिरसि श्रीब्रह्मा-ऋषये नमः। मुखे अनुष्टुप्-छन्दसे नमः। हृदये श्रीमधुसूदनाय देवतायै नमः। मम दीर्घायु-शरीरारोग्य-लक्ष्मी-फल-प्राप्त्यर्थे जपे विनियोगाय नमः अञ्जलौ।**

कर-न्यास-**ॐ अंगुष्ठाभ्यां नमः। नमो तर्जनीभ्यां स्वाहा। भगवते मध्यमाभ्यां वषट्। मधुसूदनाय अनामिकाभ्यां हुम्। ॐ नमो भगवते मधुसूदनाय करतल-कर-पृष्ठाभ्यां फट्।**

षडङ्ग-न्यास-**ॐ हृदयाय नमः। नमो शिरसे स्वाहा। भगवते शिखायै वषट्। मधुसूदनाय कवचाय हुम्। ॐ नमो भगवते मधुसूदनाय अस्त्राय फट्।**

ध्यान-

नाभि-पद्म-स्थित-विधिं, शङ्ख-चक्र-गदा-धरम्!
पीताम्बरं घन-श्यामं, मधु-कैटभ-मारकम्।।

अर्थात् जिनकी नाभि-कमल पर **ब्रह्मा** जी स्थित हैं, जो **शङ्ख-चक्र-गदा**-धारण किए हैं, जिन्होंने **पीताम्बर** धारण किया है, जो घनघोर **नीले वर्णवाले** हैं, उन **मधु-कैटभ** का विनाश करनेवाले **भगवान् श्रीमधुसूदन** का मैं ध्यान करता हूँ।

मानस-पूजा-

लं पृथिव्यात्मकं गन्धं श्रीमधु-सूदनाय समर्पयामि नमः।
हं आकाशात्मकं पुष्पं श्रीमधु-सूदनाय समर्पयामि नमः।
यं वाय्वात्मकं धूपं श्रीमधु-सूदनाय घ्रापयामि नमः।
रं वह्न्यात्मकं दीपं श्रीमधु-सूदनाय दर्शयामि नमः।
वं अमृतात्मकं नैवेद्यं श्रीमधु-सूदनाय निवेदयामि नमः।
सं सर्वात्मकं ताम्बूलं श्रीमधु-सूदनाय समर्पयामि नमः।

मन्त्र- **ॐ नमो भगवते मधुसूदनाय** (१३ अक्षर)। भोग-प्रधान सांसारिक प्रवृत्तियों को नष्ट कर मोक्ष-मार्ग प्रदान करनेवाले **भगवान् श्रीमधुसूदन** का मन-ही-मन ध्यान करते हुए '**वर्ण-माला**' में इस **त्रयोदशाक्षर मन्त्र** का जप आगे दी गई विधि के अनुसार करना चाहिए। यथा-

१. अं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय अं
२. आं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय आं
३. इं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय इं
४. ईं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय ईं
५. उं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय उं
६. ऊं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय ऊं
७. ऋं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय ऋं
८. ॠं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय ॠं
९. ऌं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय ऌं
१०. ॡं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय ॡं
११. एं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय एं
१२. ऐं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय ऐं
१३. ओं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय ओं
१४. औं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय औं
१५. अं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय अं
१६. अः ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय अः
१७. कं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय कं
१८. खं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय खं
१९. गं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय गं
२०. घं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय घं
२१. ङं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय ङं
२२. चं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय चं
२३. छं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय छं
२४. जं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय जं
२५. झं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय झं
२६. ञं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय ञं
२७. टं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय टं
२८. ठं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय ठं
२९. डं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय डं
३०. ढं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय ढं
३१. णं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय णं
३२. तं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय तं
३३. थं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय थं
३४. दं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय दं
३५. धं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय धं
३६. नं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय नं
३७. पं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय पं
३८. फं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय फं
३९. बं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय बं
४०. भं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय भं
४१. मं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय मं
४२. यं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय यं
४३. रं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय रं
४४. लं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय लं
४५. वं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय वं
४६. शं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय शं
४७. षं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय षं
४८. सं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय सं
४९. हं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय हं
५०. ळं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय ळं

५१. ळं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय ळं
५२. हं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय हं
५३. सं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय सं
५४. षं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय षं
५५. शं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय शं
५६. वं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय वं
५७. लं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय लं
५८. रं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय रं
५९. यं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय यं
६०. मं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय मं
६१. भं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय भं
६२. बं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय बं

६३. फं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय फं
६४. पं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय पं
६५. नं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय नं
६६. धं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय धं
६७. दं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय दं
६८. थं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय थं
६९. तं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय तं
७०. णं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय णं
७१. ढं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय ढं
७२. डं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय डं
७३. ठं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय ठं
७४. टं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय टं
७५. ञं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय ञं
७६. झं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय झं
७७. जं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय जं
७८. छं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय छं
७९. चं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय चं
८०. ङं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय ङं
८१. घं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय घं
८२. गं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय गं
८३. खं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय खं
८४. कं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय कं
८५. अः ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय अः
८६. अं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय अं
८७. औं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय औं
८८. ओं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय ओं
८९. ऐं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय ऐं
९०. एं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय एं
९१. ऌं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय ऌं
९२. ऌं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय ऌं
९३. ॠं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय ॠं
९४. ऋं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय ऋं
९५. ऊं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय ऊं
९६. उं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय उं
९७. ईं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय ईं
९८. इं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय इं
९९. आं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय आं
१००. अं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय अं
१०१. अं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय अं
१०२. कं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय कं
१०३. चं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय चं
१०४. टं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय टं
१०५. तं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय तं
१०६. पं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय पं
१०७. यं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय यं
१०८. शं ॐ नमो भगवते मधु-सूदनाय शं

होम- यथा-शक्ति 'जप' करने के बाद मधुर-त्रय (घी, शहद, शक्कर) से युक्त कमल-पुष्पों से 'होम' करे, तो दीर्घायु के साथ लक्ष्मी, शरीरारोग्य की प्राप्ति होती है।

गुप्तावतार बाबाश्री की कृपा से प्राप्त भगवान् श्रीकृष्ण के दुर्लभ मन्त्रों की साधना विश्व-गुरु भगवान् श्रीकृष्ण की आरती

१.

भगवती श्रीदक्षिणा काली द्वारा उपासित विश्वम्भर-श्रीकृष्ण-एकादशाक्षर-मन्त्र-साधना

२.

भगवान् नारद द्वारा उपासित परमात्मा-श्रीकृष्ण-एकादशाक्षर-मन्त्र-साधना

३.

भगवान् वेदव्यास द्वारा उपासित प्राणेश्वर-श्रीकृष्ण-द्वाविंशाक्षर-मन्त्र-साधना

'विश्वम्भर-श्रीकृष्ण'-एकादशाक्षर-मन्त्र-साधना

विनियोग–ॐ अस्य विश्वम्भर-श्रीकृष्ण-एकादशाक्षर-मन्त्रस्य भगवती श्रीदक्षिणा काली ऋषिः। भगवान् विश्वम्भरो श्रीकृष्णः देवता। श्रीं शक्तिः। क्लीं वीजं। ह्रीं कीलकं। विश्वम्भर-भगवान् श्रीकृष्ण-प्रीत्यर्थे जपे विनियोगः।

ऋष्यादि-न्यास–शिरसि भगवती श्रीदक्षिणा-काली-ऋषये नमः। हृदये भगवान् विश्वम्भरो श्रीकृष्ण-देवतायै नमः। श्रीं-शक्तये नमः नाभौ। क्लीं-वीजाय नमः लिङ्गे। ह्रीं-कीलकाय नमः पादयोः। विश्वम्भर-भगवान् श्रीकृष्ण-प्रीत्यर्थे जपे विनियोगाय नमः अञ्जलौ।

कर-न्यास–क्लां अंगुष्ठाभ्यां नमः। क्लीं तर्जनीभ्यां नमः। क्लूं मध्यमाभ्यां नमः। क्लैं अनामिकाभ्यां नमः। क्लौं कनिष्ठाभ्यां नमः। क्लः करतल-कर-पृष्ठाभ्यां नमः।

षडङ्ग-न्यास–क्लां हृदयाय नमः। क्लीं शिरसे स्वाहा। क्लूं शिखायै वषट्। क्लैं कवचाय हुम्। क्लौं नेत्र-त्रयाय वौषट्। क्लः अस्त्राय फट्।

ध्यान–

मुरली-धरो मुर-हरो, द्वि-भुजो विश्व-नायकः।
पीताम्बर-धरोऽमोघो, गोप-वृन्दैर्निषेवितः।।

अर्थात् 'मुर' नामक राक्षस के नाशक और विश्व के नेता अमोघ भगवान् श्रीकृष्ण दोनों हाथों से मुरली धारण किए हैं, पीताम्बर पहने हैं और चारों ओर से गोप-समूह उनकी सेवा में तत्पर है।

मानस-पूजा–

लं पृथिव्यात्मकं गन्धं विश्वम्भर-भगवते श्रीकृष्णाय नमः समर्पयामि।
हं आकाशात्मकं पुष्पं विश्वम्भर-भगवते श्रीकृष्णाय नमः समर्पयामि।
यं वाय्वात्मकं धूपं विश्वम्भर-भगवते श्रीकृष्णाय नमः घ्रापयामि।
रं वह्न्यात्मकं दीपं विश्वम्भर-भगवते श्रीकृष्णाय नमः दर्शयामि।
वं अमृतात्मकं नैवेद्यं विश्वम्भर-भगवते श्रीकृष्णाय नमः निवेदयामि।
सं सर्वात्मकं ताम्बूलं विश्वम्भर-भगवते श्रीकृष्णाय नमः समर्पयामि।

मन्त्र– क्लीं ह्रीं श्रीं वासुदेवाय नमो ॐ (११ अक्षर)।

यन्त्रोद्धार–विन्दु, त्रिकोण, षट्कोण, अष्ट-दल, तीन वृत्त और भू-पुर–इस प्रकार विश्वम्भर भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा हेतु 'श्रीचक्र-राज' की रचना कर, उसमें उनके आवरण-देवताओं का पूजन-तर्पण करे। यथा–

'विन्दु' में 'श्री' के सहित 'विश्वम्भर भगवान् श्रीकृष्ण' की पूजा करे।

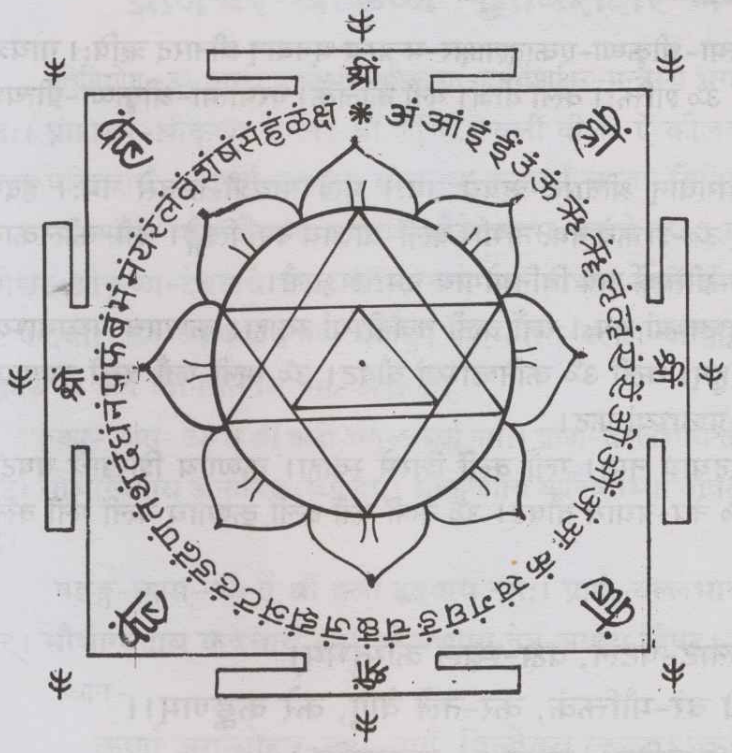

'त्रिकोण' के तीनों कोणों में क्रमशः १ **इच्छा-शक्ति,** २ **ज्ञान-शक्ति** और ३ **क्रिया-शक्ति** की पूजा करे।

'षट्-कोण' के छः कोणों में छः देवियों की पूजा करे — १ **जया,** २ **पूर्णा,** ३ **महा-विद्या-अविद्या,** ४ **विश्व-मोहिनी,** ५ **कामदा** और ६ **प्रीतिदा।**

'अष्ट - दलों' में आठ शक्तियों की पूजा करे। यथा — १ **सत्या,** २ **सत्य-प्रिया,** ३ **राधा,** ४**रुक्मिणी,** ५ **जम्ब-नायिका,** ६ **कालिन्दी,** ७ **सत्य-भामा** और ८ **द्रौपदी।**

तदनन्तर स्वर-व्यञ्जन-युक्त पचास लिपि-वर्णों द्वारा **'तीनों वृत्तों'** में पूजा करे।

'भू-पुर' में **उद्धव, अक्रूर, सात्यकि, अर्जुन, महा-सेन** और **मारुति** की पूजा करे।

यह पूजा दक्षिणावर्त - क्रम से करनी चाहिए।

***विशेष** : गुप्तावतार बाबाश्री के अनन्य भक्त श्रीहरकिशन झवेरी जी के संग्रह में से भगवान् श्रीकृष्ण की उपासना का प्रस्तुत विधान 'चण्डी' के पाठकों के लाभार्थ प्रकाशित किया गया है। विनियोग, ऋष्यादि-न्यास, षडङ्ग-न्यास कर 'ध्यान' के अनुसार भगवान् श्रीकृष्ण के स्वरूप को हृदयङ्गम कर भक्त-जन सहज ही उनका मानस-पूजन कर मन्त्र का 'जप' कर सकते हैं। जो चाहें, वे 'मानस-पूजा' के बाद भगवान् श्रीकृष्ण का बाह्य पूजन भी कर सकते हैं। इसके लिए 'पूजा-यन्त्र' का उद्धार भी विधि-सहित दिया गया है। - स०*

★ ★ ★

'परमात्मा-श्रीकृष्ण'-एकादशाक्षर-मन्त्र-साधना

विनियोग–ॐ अस्य परमात्मा-श्रीकृष्ण-एकादशाक्षर-मन्त्रस्य भगवान् श्रीनारद ऋषिः। गायत्री छन्दः। परमात्मा-श्रीकृष्ण देवता। ॐ शक्तिः। क्लीं वीजं। ग्लौं कीलकं। परमात्मा-श्रीकृष्ण-प्रीत्यर्थे जपे विनियोगः।

ऋष्यादि-न्यास–शिरसि भगवान् श्रीनारद-ऋषये नमः। मुखे गायत्री-छन्दसे नमः। हृदये परमात्मा-श्रीकृष्ण-देवतायै नमः। ॐ-शक्तये नमः नाभौ। क्लीं-वीजाय नमः लिङ्गे। ग्लौं-कीलकाय नमः पादयोः। परमात्मा-श्रीकृष्ण-प्रीत्यर्थे जपे विनियोगाय नमः अञ्जलौ।

कर-न्यास–ॐ क्लीं अंगुष्ठाभ्यां नमः। ग्लौं क्लीं तर्जनीभ्यां स्वाहा। कृष्णाय मध्यमाभ्यां वषट्। क्लीं ग्लौं अनामिकाभ्यां हुम्। क्लीं ॐ कनिष्ठाभ्यां वौषट्। ॐ क्लीं ग्लौं क्लीं कृष्णाय क्लीं ग्लौं क्लीं ॐ करतल-कर-पृष्ठाभ्यां फट्।

षडङ्ग-न्यास–ॐ क्लीं हृदयाय नमः। ग्लौं क्लीं शिरसे स्वाहा। कृष्णाय शिखायै वषट्। क्लीं ग्लौं कवचाय हुम्। क्लीं ॐ नेत्र-त्रयाय वौषट्। ॐ क्लीं ग्लौं क्लीं कृष्णाय क्लीं ग्लौं क्लीं ॐ अस्त्राय फट्।

ध्यान–

कस्तूरी-तिलकं ललाट-पटले, वक्ष-स्थले कौस्तुभम्।
नासाग्रे वर-मौक्तिकं, कर-तले वेणु, करे कङ्कणम्।।
सर्वाङ्गे वर-चन्दन-सुललितं, कण्ठे च मुक्तावलिः।
सर्वस्वात्म-परो परात्म-परमो विश्वात्मने धीमहि।।

अर्थात् भगवान् श्रीकृष्ण के मस्तक पर कस्तूरी का तिलक है, वक्षः-स्थल पर कौस्तुभ-मणि है, नाक के अग्र-भाग में श्रेष्ठ मोती है, कर-तल में वंशी है, कर-कमलों में कङ्कन हैं, सारे शरीर में श्रेष्ठ सुन्दर चन्दन है और कण्ठ में मोतियों की माला है। आत्मा, परात्मा और विश्वात्मा-परायण–सभी के सर्वस्व-स्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण का मैं ध्यान करता हूँ।

मानस-पूजा–

लं पृथिव्यात्मकं गन्धं परमात्मा-श्रीकृष्ण-देवतायै समर्पयामि नमः।
हं आकाशात्मकं पुष्पं परमात्मा-श्रीकृष्ण-देवतायै समर्पयामि नमः।
यं वाय्वात्मकं धूपं परमात्मा-श्रीकृष्ण-देवतायै घ्रापयामि नमः।
रं वह्न्यात्मकं दीपं परमात्मा-श्रीकृष्ण-देवतायै दर्शयामि नमः।
वं अमृतात्मकं नैवेद्यं परमात्मा-श्रीकृष्ण-देवतायै निवेदयामि नमः।
सं सर्वात्मकं ताम्बूलं परमात्मा-श्रीकृष्ण-देवतायै समर्पयामि नमः।

मन्त्र– ॐ क्लीं ग्लौं क्लीं कृष्णाय क्लीं ग्लौं क्लीं ॐ (११ अक्षर)।

'प्राणेश्वर-श्रीकृष्ण'-द्वाविंशक्षर-मन्त्र-साधना

विनियोग–ॐ अस्य प्राणेश्वर-श्रीकृष्ण-द्वाविंशक्षर-मन्त्रस्य भगवान् श्रीवेदव्यास ऋषिः। गायत्री छन्दः। प्राणेश्वर-श्रीकृष्ण देवता। श्रीं शक्तिः। क्लीं वीजं। ऐं कीलकं। ॐ व्यापकः। मम समस्त-क्लेश-परिहारार्थं, चतुर्वर्ग-प्राप्तये, सौभाग्य-वृद्ध्यर्थं च जपे विनियोगः।

ऋष्यादि-न्यास–शिरसि भगवान् श्रीवेदव्यास-ऋषये नमः। मुखे गायत्री-छन्दसे नमः। हृदये प्राणेश्वर-श्रीकृष्ण-देवतायै नमः। श्रीं-शक्तये नमः नाभौ। क्लीं-वीजाय नमः लिङ्गे। ऐं-कीलकाय नमः पादयोः। ॐ-व्यापकाय नमः सर्वाङ्गे। मम समस्त-क्लेश-परिहारार्थं, चतुर्वर्ग-प्राप्तये, सौभाग्य-वृद्ध्यर्थं च जपे विनियोगाय नमः अञ्जलौ।

कर-न्यास–ॐ ऐं श्रीं क्लीं अंगुष्ठाभ्यां नमः। प्राण-वल्लभाय तर्जनीभ्यां स्वाहा। सौः मध्यमाभ्यां वषट्। सौभाग्यदाय अनामिकाभ्यां हुम्। श्रीकृष्णाय कनिष्ठाभ्यां वौषट्। स्वाहा करतल-कर-पृष्ठाभ्यां फट्।

षडङ्ग-न्यास–ॐ ऐं श्रीं क्लीं हृदयाय नमः। प्राण-वल्लभाय शिरसे स्वाहा। सौः शिखायै वषट्। सौभाग्यदाय कवचाय हुम्। श्रीकृष्णाय नेत्र-त्रयाय वौषट्। स्वाहा अस्त्राय फट्।

ध्यान–

कृष्णं जगन्मोहन-रूप-वर्णं, विलोक्य लज्जाऽऽकुलितां स्मराढ्याम्।
मधूक-माला-युत-कृष्ण-देहं, विलोक्य चालिंग्य हरिं स्मरन्तीम्।।

अर्थात् संसार को मुग्ध करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण के रूप-रङ्ग को देखकर, प्रेम-पूर्ण होकर गोपियाँ लज्जा-पूर्वक व्याकुल होती हैं और मन-ही-मन हरि को स्मरण करती हुईं, भगवान् श्रीकृष्ण की मधूक-पुष्पों की माला से विभूषित देह का आलिङ्गन करती हैं।

मानस-पूजा–

लं पृथिव्यात्मकं गन्धं प्राणेश्वर-श्रीकृष्ण-देवतायै समर्पयामि नमः।
हं आकाशात्मकं पुष्पं प्राणेश्वर-श्रीकृष्ण-देवतायै समर्पयामि नमः।
यं वाय्वात्मकं धूपं प्राणेश्वर-श्रीकृष्ण-देवतायै घ्रापयामि नमः।
रं वह्न्यात्मकं दीपं प्राणेश्वर-श्रीकृष्ण-देवतायै दर्शयामि नमः।
वं अमृतात्मकं नैवेद्यं प्राणेश्वर-श्रीकृष्ण-देवतायै निवेदयामि नमः।
सं सर्वात्मकं ताम्बूलं प्राणेश्वर-श्रीकृष्ण-देवतायै समर्पयामि नमः।

मन्त्र– ॐ ऐं श्रीं क्लीं प्राण-वल्लभाय सौः सौभाग्यदाय श्रीकृष्णाय स्वाहा। (२२ अक्षर)।

विश्व-गुरु भगवान् श्रीकृष्ण की आरती

स्वेच्छा-रूप-धरस्त्वं, नारायण विष्णु:।
अक्षर-ब्रह्म सनातन, विश्वम्भर विष्णु:।।
ध्यानाय च भक्तस्य तु, विविधाकार-धरो।
रूपस्य स्थूलाङ्कित, दर्शन दिव्य वरो।।
जय-जय श्री पुरुषोत्तम, जय श्री-नाथ हरे!
भक्त-मनोरथ जो कुछ, क्षण में सिद्ध करे।।
जय श्री विश्व-गुरू।।१

सत्ये शुक्ल स्वरूपं, त्रेता वसु-रूपम् ।
द्वापर पीताम्बर-धर, पीत-प्रभा-सूपम् ।।
कृष्णो कृष्ण कलिस्त्वं, त्वं विश्वाधार:।
त्वं माया-पति त्वं निज-रूप-कलाधार:।
जय-जय श्री पुरुषोत्तम, जय श्री-नाथ हरे!
भक्त-मनोरथ जो कुछ, क्षण में सिद्ध करे।।
जय श्री विश्व-गुरू ।।२

नव धाराधर सुन्दर, श्री राधा-वरदो।
मुर-हर भक्त-कृपा-कर, रास-शशि: शरदो।।
नन्दन नन्द-यशोदा, देवकि-वसु-तनयो।
वृन्दवन वंशी-वट, तट यमुना-प्रणयो।।
जय-जय श्री पुरुषोत्तम, जय श्री-नाथ हरे!
भक्त-मनोरथ जो कुछ, क्षण में सिद्ध करे।।
जय श्री विश्व-गुरू ।।३

वन्दे रुक्मिणी-रमणो, कोटि मदन-कदनम् ।
राधा-भक्ति सु-बद्धित, बद्ध मनो-सदनम् ।।
शक्ति-मयं सर्वेशं, सर्व-परो रूपम् ।
सर्वानन्द-प्रदाता, मूलं जग भूपम् ।।
जय-जय श्री पुरुषोत्तम, जय श्री-नाथ हरे!
भक्त-मनोरथ जो कुछ, क्षण में सिद्ध करे।।
जय श्री विश्व-गुरू ।।४

इन्द्रिय-पर मन-पर त्वं, सर्व-परो परमो।
जग-रमिणी-प्राणेश्वर, दीन-प्रियो वरमो ।।
गोपी-प्रिय गोप: प्रिय, बंशी-प्रिय मधुरा ।
स्वर-प्रिय विश्व-जन: प्रिय, राधाधर अधरा।।

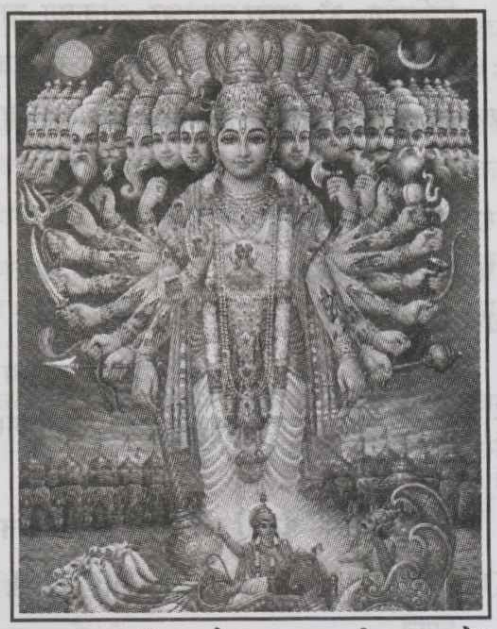

जय-जय श्री पुरुषोत्तम, जय श्री-नाथ हरे!
भक्त-मनोरथ जो कुछ, क्षण में सिद्ध करे।।
जय श्री विश्व-गुरू।। ५

कस्तूरी-तिलकार्चित, वन-मालाऽऽभरणम् ।
पीताम्बर मुरली-धर, भक्त सुकर धरणम् ।।
बिम्बाधर दामोदर, रक्त प्रभा मणि की।
देहु दया-मय हितकर, भक्ति सुधा कणि की ।।
जय-जय श्री पुरुषोत्तम, जय श्री-नाथ हरे!
भक्त-मनोरथ जो कुछ, क्षण में सिद्ध करे।।
जय श्री विश्व-गुरू ।।६

देशोदय जन-मन में, बुद्धि हिताहित की।
डूबत जग राखहु कर धर, मन धर जित की।।
'मोती' मोह निवारहु, दारहु दुख नग से।
पुण्य प्रथा सञ्चारहु, तारहु प्रभु जग से।।
जय-जय श्री पुरुषोत्तम, जय श्री-नाथ हरे!
भक्त मनोरथ जो कुछ, क्षण में सिद्ध करे।।
जय श्री विश्व-गुरू ।।७

-गुप्तावतार 'बाबाश्री'

विश्व-गुरु भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा 'श्रीगीता' में वर्णित त्रयात्मक ज्ञान

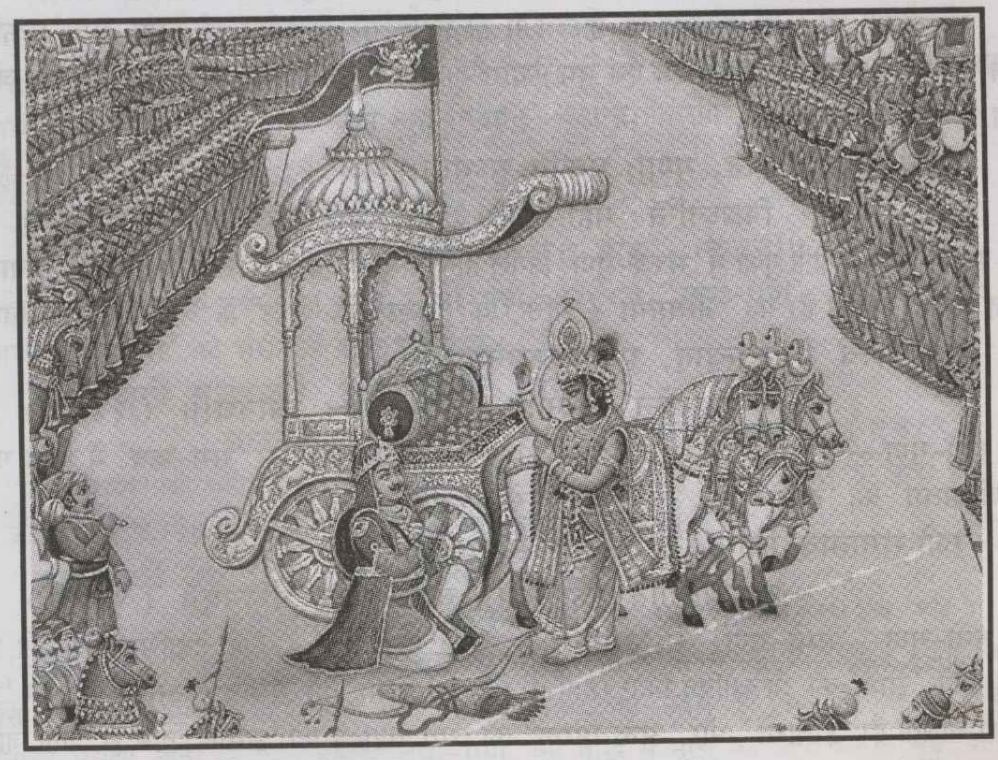

पाठकों के सम्मुख यहाँ '**श्रीगीता**' में आख्यायित **गुण, श्रद्धा, ज्ञान, कर्म, कर्त्ता, त्याग, बुद्धि, धृति** एवं **सुख** जैसे तत्त्वों के '**त्रि-विध स्वरूपों**' का निरूपण अति संक्षेप में प्रस्तुत हो रहा है। इससे पाठकों को '**गीता-दर्शन**' में रुचि लेने व उसमें गहरे पैठने की प्रेरणा मिलेगी। साथ ही, विशेष रूप से **विश्व-गुरु भगवान् श्रीकृष्ण** द्वारा वर्णित **त्रयात्मक ज्ञान** को मनन करने का अवसर भी प्राप्त होगा।

–सम्पादक

विश्व-गुरु भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा

'श्रीगीता' में वर्णित त्रयात्मक ज्ञान

डॉ० (श्रीमती) विजयलक्ष्मी चूड़ामणि,
पूर्व-प्रो० राजनीति विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयाग-राज

१. गुणों के त्रि-विध रूप एवं गुणातीत पुरुष के लक्षण

'**श्री गीता**' के १४वें अध्याय के प्रारम्भ में ही **विश्व-गुरु भगवान् श्रीकृष्ण** द्वारा '**प्रकृति**' से उत्पन्न हुए '**तीन गुणों**' (**सत्त्व, रज** एवं **तम**) द्वारा अविनाशी '**जीवात्मा**' को शरीर से बाँधे जाने का कथन है—

सत्त्वं रजस्तम इति, गुणाः प्रकृति-सम्भवाः।
निबध्नन्ति महा-बाहो!, देहे देहिनमव्ययम्॥ (१४/५)

सत्त्व-गुण—तीनों गुणों में '**सत्त्व-गुण**' निर्मल होने के कारण **प्रकाश करनेवाला** और '**अनामयम्**' अर्थात् **विकार-रहित** है। यह '**जीवात्मा**' (व्यक्ति) को '**सुख**' एवं '**ज्ञान**' के अभिमान से बाँधता है—

तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्, प्रकाशकमनामयम्।
सुख-सङ्गेन बध्नाति, ज्ञान-सङ्गेन चानघ!॥ (१४/६)

रजो-गुण—'**कामना**' और '**आसक्ति**' से उत्पन्न '**रजो-गुण**' को '**राग-रूप**' में माना गया है, जो '**जीवात्मा**' को '**कर्मों**' और उनके '**फल**' से बाँधता है—

रजो रागात्मकं विद्धि, तृष्णा-सङ्ग-समुद्भवम्।
तन्निबध्नाति कौन्तेय!, कर्म-सङ्गेन देहिनम्॥ (१४/७)

तमो-गुण—'**तमो-गुण**' को '**अज्ञान**' से उत्पन्न माना गया है। यह देहाभिमानियों को मोहित करके उनके '**ज्ञान**' को आच्छादित किए रहता है। यह '**जीवात्मा**' को '**प्रमाद**', '**आलस्य**' और '**निद्रा**' के द्वारा बाँधता है। '**इन्द्रियों**' और '**अन्तःकरण**' की व्यर्थ चेष्टाओं को '**प्रमाद**' नाम से जाना जाता है। कर्त्तव्य-कर्मों में '**अप्रवृत्ति**' का होना, '**निरुद्यमता**' आदि को '**आलस्य**' के नाम से जाना जाता है—

तमस्त्वज्ञानजं विद्धि, मोहनं सर्व-देहिनाम्।
प्रमादालस्य - निद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत!॥ (१४/८)

'**जीवात्मा**' में उक्त '**तीनों गुण**' परस्पर एक दूसरे को दबाकर बढ़ने या प्रभावी होने का प्रयत्न करते हैं। उदाहरणार्थ '**रजो-गुण**' और '**तमो-गुण**' को दबाकर '**सत्त्व-गुण**' बढ़ता है। '**सत्त्व-गुण**' और '**तमो-गुण**' को दबाकर '**रजो-गुण**' बढ़ता है। वैसे ही '**सत्त्व-गुण**' और '**रजो-गुण**' को दबाकर '**तमो-गुण**' बढ़ता है—

रजस्तमश्चाभिभूय, सत्त्वं भवति भारत!
रजः सत्त्वं तमश्चैव, तमः सत्त्वं रजस्तथा॥ (१४/१०)

'**सत्त्व-गुण**' के बढ़ने पर '**जीवात्मा**' की '**देह**' तथा '**अन्तः-करण**' में और '**इन्द्रियों**' में '**चेतनता**' तथा '**विवेक-शक्ति**' उत्पन्न होती है—

सर्व-द्वारेषु देहेऽस्मिन्, प्रकाश उपजायते।
ज्ञानं यदा तदा विद्याद्, विवृद्धं सत्त्वमित्युत॥ (१४/११)

'**रजो-गुण**' के बढ़ने पर '**जीवात्मा**' में '**लोभ, स्वार्थ-बुद्धि, सकाम-भाव**' से ही '**कर्मों में प्रवृत्ति**', '**अशान्ति**' एवं '**विषय-भोगों की लालसा**' आदि उत्पन्न होती हैं—

लोभः प्रवृत्तिरारम्भः, कर्मणामशमः स्पृहा।
रजस्येतानि जायन्ते, विवृद्धे भरतर्षभ!॥ (१४/१२)

'**तमो-गुण**' के बढ़ने पर '**अन्तः-करण**' और '**इन्द्रियों**' में **अप्रकाश, कर्त्तव्य-कर्मों में अप्रवृत्ति** व **उदासीनता, प्रमाद** अर्थात् **व्यर्थ चेष्टा** तथा **निद्रादि**—'**अन्तः-करण**' **की मोहिनी प्रवृत्तियाँ** उत्पन्न होती हैं—

अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च, प्रमादो मोह एव च।
तमस्येतानि जायन्ते, विवृद्धे कुरु - नन्दन!॥ (१४/१३)

इस प्रकार '**सत्त्व-गुण**' का सुख, '**रजो-गुण**' का कर्म, '**तमो-गुण**' का अज्ञान एवं प्रमाद अविनाशी '**जीवात्मा**' को शरीर से बाँधे रखता है—

सत्त्वं सुखे सञ्जयति, रजः कर्मणि भारत!
ज्ञानमावृत्य तु तमः, प्रमादे सञ्जयत्युत॥ (१४/९)

'**सत्त्व-गुण**' की वृद्धि होने पर मृत्यु को प्राप्त मनुष्य **स्वर्गादि उच्च लोकों** को प्राप्त होता है। ये स्थान उत्तम कर्म करनेवालों के लिए **निर्मल दिव्य-लोक** माने जाते हैं—

यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु, प्रलयं याति देह-भृत्।
तदोत्तम-विदां लोकानमलान् प्रतिपद्यते॥ (१४/१४)

'**रजो-गुण**' की वृद्धि में मृत्यु को प्राप्त मनुष्य **पृथ्वी-लोक** में उत्पन्न होता है, जहाँ कर्मों में आसक्ति रखनेवाले अन्य अनेक मनुष्य रहते हैं। यह लोक उच्च '**स्वर्ग**' व निम्न '**नरक**' के बीच मध्य स्थानवाला समझा जाता है। उसी प्रकार '**तमो-गुण**' की वृद्धि में मृत्यु को प्राप्त व्यक्ति मूढ़-योनियों में उत्पन्न होकर '**नरक**' को प्राप्त होते हैं—

रजसि प्रलयं गत्वा, कर्म-सङ्गिषु जायते।
तथा प्रलीनस्तमसि, मूढ-योनिषु जायते॥ (१४/१५)

इस प्रकार संक्षेप में—'**सत्त्व-गुण**' में स्थित पुरुष '**स्वर्गादि**' उच्च लोकों में जाते हैं। '**राजस**' में स्थित पुरुष मध्य में अथवा '**मनुष्य-लोक**' में ही रहते हैं। '**तमो-गुण**' में स्थित पुरुष निम्न '**नरक**' को प्राप्त होते हैं—

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था, मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।
जघन्य-गुण-वृत्तिस्था, अधो गच्छन्ति तामसाः॥ (१४/१८)

'**काम, क्रोध**' तथा '**लोभ**'—'**नरक**' के त्रि-विध द्वार माने गए हैं, जो '**आत्मा**' को अधो-गति में ले जाते हैं—

त्रि-विधं नरकस्येदं, द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत्॥ (१६/२१)

'**श्रीगीता**' के १४वें अध्याय के अन्त में **विश्व-गुरु भगवान् श्रीकृष्ण**, **अर्जुन** से कहते हैं कि जिस समय '**समष्टि-चेतन**' में एकी-भाव से स्थित हुआ '**साक्षी पुरुष**' इन तीनों गुणों के अतिरिक्त अन्य किसी को '**कर्त्ता**' नहीं देखता, अपितु उनके परे '**परमात्मा**' को तत्त्व से जानता है, उस समय '**शरीर**' की उत्पत्ति के कारण-स्वरूप इन '**तीनों गुणों**' का उल्लङ्घन करके **जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था** और सब प्रकार के दुःखों से मुक्त होकर वह '**गुणातीत**' हो जाता है। वह **ब्रह्म-स्वरूप** होकर **परमानन्द** को प्राप्त होता है—

नान्यं गुणेभ्यः कर्त्तारं, यदा द्रष्टाऽनुपश्यति।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति, मद्-भावं सोऽधिगच्छति॥ (१४/१९)

गुणानेतानतीत्य त्रीन्, देही देह-समुद्भवान्।
जन्म-मृत्यु-जरा-दुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते॥ (१४/२०)

विश्व-गुरु भगवान् श्रीकृष्ण के उक्त कथन पर **अर्जुन** उनसे '**गुणातीत पुरुष**' के सम्बन्ध में और अधिक जानने की जिज्ञासा से तीन प्रश्न पूछते हैं—

(१) '**तीनों गुणों**' से युक्त पुरुष किन-किन लक्षणों से युक्त होता है?

(२) वह किस प्रकार के '**आचरण**'-वाला होता है?

(३) वह किस '**उपाय**' से '**तीनों गुणों**' से अतीत होता है?

कैर्लिङ्गैस्त्रीन् गुणानेतानतीतो भवति प्रभो?
किमाचाराः कथं चैताँस्त्रीन् गुणानति-वर्तते?॥ (१४/२१)

विश्व-गुरु भगवान् श्रीकृष्ण प्रथम दो प्रश्नों के उत्तर में '**गुणातीत पुरुष**' के लक्षणों एवं आचरणों का वर्णन करते हुए कहते हैं कि—

'**गुणातीत पुरुष**' के '**अन्तः-करण**' और '**इन्द्रियादि**' में एक प्रकाश-युक्त '**चेतना**' होती है, जिससे वह '**त्रिगुण-मयी माया**' के प्रपञ्च-जाल से सर्वथा अतीत हो जाता है। वह '**अभिमान-रहित अन्तः-करण**'-वाला होता है।

'**गुणातीत पुरुष**'—'**तीनों गुणों**' के (१) **सत्त्व-गुण** के कार्य-रूप '**प्रकाश**' को, (२) **रजो-गुण** के कार्य-रूप '**प्रवृत्ति**' को तथा (३) **तमो-गुण** के कार्य-रूप '**मोहादि**' के '**प्रवृत्त**' होने पर न तो उनसे द्वेष करता है और न '**निवृत्त**' होने पर उनकी आकांक्षा ही करता है अर्थात् '**गुणातीत पुरुष**' '**तीनों गुणों**' की प्रवृत्तियों के प्रकट होने और न होने पर किसी काल में भी **इच्छा-द्वेष आदि विकार** से ग्रसित नहीं होता—

प्रकाशं च प्रवृत्तिं च, मोहमेव च पाण्डव!
न द्वेष्टि सम्प्रवृत्तानि, न निवृत्तानि काङ्क्षति॥ (१४/२२)

'**गुणातीत पुरुष**'—'**साक्षी**' के सदृश (उदासीन-वत्) स्थित हुआ '**गुणों**' के द्वारा विचलित नहीं होता। वह '**गुण**' ही (गुणों में) बरतते हैं, ऐसा समझता हुआ अपनी '**एकी-भाव-स्थिति**' से कभी विचलित नहीं होता अर्थात् वह '**इन्द्रियों**' का अपने-अपने '**गुणों**' में विचरना ही '**गुणों**' का '**गुणों में बरतना**' मानकर उनसे विचलित हुए बिना **सच्चिदानन्द-घन परमात्मा** में '**एकी-भाव**' से स्थित रहता है—

उदासीन-वदासीनो, गुणैर्यो न विचाल्यते।
गुणा वर्तन्त इत्येव, योऽवतिष्ठति नेङ्गते॥ (१४/२३)

'गुणातीत पुरुष'—'**समत्व**' व '**सम-बुद्धि-योग**' का अवलम्बन करके, निरन्तर '**आत्म-भाव**' में स्थित रहकर सबके प्रति '**सम-भाव-वाला**' होता है अर्थात् वह दुःख-सुख को समान भाव से लेता है। वह मिट्टी, पत्थर व स्वर्ण के प्रति भी '**सम-भाव**' रखता है। ऐसा '**ज्ञानी**' पुरुष प्रिय और अप्रिय को एक-सा माननेवाला होता है। वह स्वयं की '**निन्दा**' और '**संस्तुति**' में भी '**सम-भाव**' रखता है। वह '**मान**' और '**अपमान**' में '**सम**' रहता है। वह '**मित्र**' और '**बैरी**' के प्रति भी '**सम-भाव-वाला**' होता है, वह सम्पूर्ण कर्त्तव्य-कर्मों में '**कर्त्ता-पन**' के अभिमान से रहित होता है—

सम-दुःख-सुखः स्वस्थः, सम-लोष्टाश्म-काञ्चनः।
तुल्य-प्रियाप्रियो धीरस्तुल्य-निन्दात्म-संस्तुतिः॥ (१४/२४)
मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारि-पक्षयोः।
सर्वारम्भ-परित्यागी, गुणातीतः स उच्यते॥ (१४/२५)

तीसरे प्रश्न के उत्तर में '**गुणातीत**' होने के '**उपाय**' और उनके '**फल**' का वर्णन करते हुए **विश्व-गुरु भगवान् श्रीकृष्ण** कहते हैं—

जो पुरुष '**अव्यभिचारिणी-भक्ति-योग**' के द्वारा निरन्तर उन्हें भजता है अर्थात् जो केवल एक '**सर्व-शक्ति-मान् परमेश्वर वासुदेव भगवान्**' को ही अपना स्वामी मानता है; जो '**स्वार्थ**' और '**अभिमान**' को त्याग कर, '**श्रद्धा**' और परम '**प्रेम-भाव**' से उनके चिन्तन में लीन रहता है; उन्हीं को अविनाशी '**पर-ब्रह्म**' का, '**अमृत**' का, '**नित्य-धर्म**' का और '**अखण्ड एक-रस**' का '**आनन्द-आश्रय**' मानता है; वह पुरुष इन '**तीनों गुणों**' को भली-भाँति लाँघकर '**ब्रह्म**' को प्राप्त करने योग्य बन जाता है—

मां च योऽव्यभिचारेण, भक्ति-योगेन सेवते।
स गुणान् समतीत्यैतान्, ब्रह्म-भूयाय कल्पते॥ (१४/२६)
ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाऽहममृतस्याव्ययस्य च।
शाश्वतस्य च धर्मस्य, सुखस्यैकान्तिकस्य च॥ (१४/२७)

❋ ❋ ❋

२. 'श्रद्धा', 'आहार', 'यज्ञ', 'तप' एवं 'दान' के त्रि-विध स्वरूप

१. श्रद्धा के त्रि-विध स्वरूप —

'**श्री गीता**' के १७वें अध्याय के प्रारम्भ में **विश्व-गुरु भगवान् श्रीकृष्ण** द्वारा '**श्रद्धा**' के त्रि-विध स्वरूपों का निरूपण हुआ है। यथा—

त्रि-विधा भवति श्रद्धा, देहिनां सा स्वभावजा।
सात्त्विकी राजसी चैव, तामसी चेति तां शृणु॥ (१७/२)

अर्थात् मनुष्यों में स्वभावतया '**श्रद्धा**' तीन प्रकार की होती है—(१) **सात्त्विकी**, (२) **राजसी**, (३) **तामसी**। स्वभावतया '**श्रद्धा**'—उस स्वाभाविक '**श्रद्धा**' को कहते हैं, जो मनुष्य में अनेक जन्मों में किए हुए कर्मों के सञ्चित संस्कार से उत्पन्न होती है। जो मनुष्य जिस भाँति की '**श्रद्धा**'-वाला होता है, उसी से उसका स्वरूप भी निश्चित किया जा सकता है—

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य, श्रद्धा भवति भारत!
श्रद्धा-मयोऽयं पुरुषो, यो यच्छ्रद्धः स एव सः॥ (१७/३)

'**सात्त्विकी पुरुष**'—'**देवों**' को पूजते हैं। '**राजस पुरुष**'—'**यक्ष**' और '**राक्षसों**' को पूजते हैं। '**तामसी पुरुष**'—'**प्रेत**' और '**भूत-गणों**' को पूजते हैं। इस प्रकार '**देव, यक्ष**' और '**प्रेतादि**' के पूजन से त्रि-विध '**श्रद्धा-युक्त पुरुषों**' की पहचान की जा सकती है—

यजन्ते सात्त्विका देवान्, यक्ष-रक्षांसि राजसाः।
प्रेतान् भूत-गणांश्चान्ये, यजन्ते तामसा जनाः॥ (१७/४)

२. आहार के त्रि-विध स्वरूप —

सात्त्विक आहार—आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख और प्रीति को बढ़ानेवाला होता है। ऐसे आहार रस-युक्त, चिकने व स्थिर गुणवाले होते हैं। इन लक्षणों से युक्त '**आहार**' ही '**सात्त्विक पुरुषों**' को प्रिय होते हैं—

आयुः सत्त्व-बलारोग्य-सुख-प्रीति-विवर्धनाः।
रस्याः स्निग्धाः स्थिराः हृद्याः, आहाराः सात्त्विक-प्रियाः॥ (१७/८)

राजस आहार—कड़ुए, खट्टे, लवण-युक्त, बहुत गरम, तीखे, रूखे, दाह-कारक, दुःख, चिन्ता तथा रोगों को उत्पन्न करनेवाले होते हैं। इन लक्षणों से युक्त आहार '**राजस पुरुष**' को प्रिय होते हैं—

कट्वम्ल-लवणात्युष्ण-तीक्ष्ण-रूक्ष-विदाहिनः।
आहारा राजसस्येष्टा, दुःख-शोकामय-प्रदाः॥ (१७/९)

तामस आहार—अध-पके, रस-रहित, दुर्गन्ध-युक्त, बासी, उच्छिष्ट तथा अपवित्र लक्षणों से युक्त होते हैं। ऐसे आहार '**तामस पुरुष**' को प्रिय होते हैं—

यात-यामं गत-रसं, पूति पर्युषितं च यत्।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं, भोजनं तामस-प्रियम्॥ (१७/१०)

३. यज्ञ के त्रि-विध स्वरूप —

सात्त्विक यज्ञ वे होते हैं, जो **शास्त्र-विधि** से नियत होते हैं तथा जो **फल न चाहनेवाले पुरुषों द्वारा कर्त्तव्य मान कर** किए जाते हैं—

अफलाकाङ्क्षिभिर्यज्ञो, विधि-दृष्टो य इज्यते।
यष्टव्यमेवेति मनः, समाधाय स सात्त्विकः॥ (१७/११)

राजस यज्ञ वे होते हैं, जो **फल को दृष्टि में रखकर मात्र दम्भाचरण** के लिए किए जाते हैं—

अभिसन्धाय तु फलं, दम्भार्थमपि चैव यत्।
इज्यते भरत-श्रेष्ठ!, तं यज्ञं विद्धि राजसम्॥ (१७/१२)

तामस यज्ञ वे होते हैं, जो **शास्त्र-विधि से हीन, आनन्द से रहित, बिना मन्त्रों के, बिना दक्षिणा के तथा बिना श्रद्धा** के किए जाते हैं—

विधि-हीनमसृष्टान्नं, मन्त्र-हीनमदक्षिणम्।
श्रद्धा-विरहितं यज्ञं, तामसं परिचक्षते॥ (१७/१३)

४. 'तप' के 'तीन' रूप एवं त्रि-विध स्वरूप —

'**तप**' के भी '**तीन रूप**' और '**तीन प्रकार**' होते हैं। '**तप**'—१. शारीरिक, २. वाणी-सम्बन्धी एवं ३. मानसिक रूपों-वाला तथा '**सात्त्विक**', '**राजस**' एवं '**तामस**'—तीन प्रकारवाला होता है।

शारीरिक तप में **देवता, ब्राह्मण, गुरु, ज्ञानी-जन** (माता, पिता, आचार्य एवं अपने से जो किसी भी प्रकार बड़े हों) आदि के प्रति **पूज्य भाव** रखना सम्मिलित किया गया है। **पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य** और **अहिंसा** आदि **शारीरिक तप** माने गए हैं—

देव-द्विज-गुरु-प्राज्ञ-पूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च, शारीरं तप उच्यते॥ (१७/१४)

वाणी-सम्बन्धी तप का तात्पर्य ऐसे भाषणों से है, जो **अनुद्वेग-कारी** हों अथवा उत्तेजित करनेवाले न हों; जो प्रिय, हित-कारक एवं यथार्थ होते हैं। **वाणी-सम्बन्धी तप** में **वेद-शास्त्रों का पठन** और **परमेश्वर के नाम-जप का अभ्यास** भी सम्मिलित माना जाता है—

अनुद्वेग-करं वाक्यं, सत्यं प्रिय-हितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव, वाङ्-मयं तप उच्यते॥ (१७/१५)

मानसिक तप में **मन की प्रसन्नता, सौम्य एवं शान्त भावों की पवित्रता** आदि समाविष्ट माने जाते हैं—

मनः-प्रसादः सौम्यत्वं, मौनमात्म-विनिग्रहः।
भाव-संशुद्धिरित्येतत्, तपो मानसमुच्यते॥ (१७/१६)

सात्त्विक तप—जब उक्त तीन प्रकार के '**तप**', फल को न चाहनेवाले योगी पुरुषों द्वारा परम श्रद्धा से किए जाते हैं, तब उसे '**सात्त्विक तप**' कहते हैं—

श्रद्धया परया तप्तं, तपस्तत् त्रि-विधं नरैः।
अफलाकाङ्क्षिभिर्युक्तैः, सात्त्विकं परिचक्षते॥ (१७/१७)

राजस तप—जब उक्त '**तप**' सत्कार, मान, पूजा या अन्य किसी **स्वार्थ-भाव** से किए जाते हैं। इनमें **पाखण्ड-प्रदर्शन** निहित होता है। ये **अनिश्चित** एवं **क्षणिक फलवाले** माने गए हैं—

सत्कार-मान-पूजार्थं, तपो दम्भेन चैव यत्।
क्रियते तदिह प्रोक्तं, राजसं चलमध्रुवम्॥ (१७/१८)

तामस तप—जब उक्त तीन प्रकार के '**तप**' मूढ़ता-पूर्वक **हठ** से तथा **मन, वाणी** और **शरीर** को पीड़ित करके किए जाते हैं। ये **दूसरे का अनिष्ट** करने के अभिप्राय से भी किए जाते हैं—

मूढ-ग्राहेणात्मनो यत्, पीडया क्रियते तपः।
परस्योत्सादनार्थं वा, तत् तामसमुदाहृतम्॥ (१७/१९)

५. '**दान**' के त्रि-विध स्वरूप—

'**आहार, यज्ञ, तप**' के '**त्रि-विध**' **रूप** व '**प्रकार**' की भाँति '**दान**' को भी '**त्रि-विध**' **गुणों** से युक्त माना गया है। यथा—**सात्त्विक, राजस** एवं **तामस**।

सात्त्विक दान—यह '**दान**' कर्त्तव्य-भाव से प्रेरित होकर उपकार न करनेवाले के प्रति दिया जाता है। इसमें '**देश, काल**' और '**सुपात्रता**' का भी विचार किया जाता है अर्थात् जहाँ जिस देश-काल में जिस वस्तु का अभाव हो, वही उस '**देश-काल**' में '**दान**' करने के योग्य समझा जाना चाहिए। उसी प्रकार '**योग्य पात्र**' (सुपात्र) के लिए **भूखे, अनाथ, दुःखी, रोगी** और **असमर्थ** तथा **भिक्षुक** आदि का ही चयन करना चाहिए। उन्हें **अन्न, वस्त्र, औषधि** आदि ऐसी वस्तुएँ—जिसके पास जिस वस्तु का अभाव हो, उन्हें उस वस्तु के '**प्रदान**' के योग्य समझा जाना चाहिए—

दातव्यमिति यद्-दानं, दीयतेऽनुपकारणे।
देशे काले च पात्रे च; तद्-दानं सात्त्विकं स्मृतम्॥ (१७/२०)

राजस दान—यह '**दान**' प्रत्युपकार के प्रयोजन से दिया जाता है। यह '**फल-प्राप्ति**' की दृष्टि से दिया जाता है। यह '**दान**' सांसारिक कार्य-सिद्धि की आशा से दिया जाता है। कभी क्लेश-पूर्वक भी यह '**दान**' दिया जाता है—जैसे वर्तमान समय के चन्दे-चिट्ठे आदि में। बहुधा '**राजस दान**' मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा और स्वर्गादि की प्राप्ति के लिए दिया जाता है। कभी-कभी रोगादि की निवृत्ति के लिए भी यह दान दिया जाता है—

यत् तु प्रत्युपकारार्थं, फलमुद्दिश्य वा पुनः।
दीयते च परि-क्लिष्टं, तद्-दानं राजसं स्मृतम्॥ (१७/२१)

तामस दान—जो '**दान**' अयोग्य '**देश-काल**' तथा '**कुपात्र**' को दिया जाता है, उसे '**तामस दान**' कहा गया है। मद्य-मांसादि अभक्ष्य वस्तुओं को खानेवाले तथा चोरी आदि नीच कर्म करनेवाले

'**कुपात्रों**' की श्रेणी में गिने जाते हैं। '**तामस दान**' बिना सत्कार व तिरस्कार-पूर्वक तथा अवमानना के साथ भी दिया जाता है—

अदेश-काले यद्-दानमपात्रेभ्यश्च दीयते।
असत्-कृतमवज्ञातं, तत्-तामसमुदाहृतम्॥ (१७/२२)

❋❋❋

३. '**ज्ञान**' के त्रि-विध स्वरूप

'**ज्ञान**' के '**त्रि-विध**' रूपों के वर्णन के पूर्व '**ज्ञान-तत्त्व**' से सम्बन्धित '**श्रीगीता**' में **विश्व-गुरु भगवान् श्रीकृष्ण** द्वारा यत्र-तत्र व्यक्त विचारों को यहाँ संक्षेप में प्रस्तुत करना आवश्यक प्रतीत होता है—

१. ज्ञान-महिमा—

'**श्रीगीता**' के '**ज्ञान-कर्म-संन्यास-योग**' नामक चौथे अध्याय में कर्म-बन्धन से मुक्त होने के लिए विविध प्रकार के '**यज्ञों**' की चर्चा के साथ '**द्रव्य-यज्ञ**' तथा '**स्वाध्याय**'-रूप '**ज्ञान-यज्ञ**' की चर्चा भी की गई है, किन्तु इन दो प्रकार के '**यज्ञों**' में '**ज्ञान-यज्ञ**' को ही श्रेष्ठत्व प्रदान किया गया है क्योंकि यावन्मात्र सम्पूर्ण कर्म '**ज्ञान**' में ही समाप्त माने गए हैं—

श्रेयान् द्रव्य-मयाद्यज्ञाज्ज्ञान-यज्ञः परन्तप!
सर्वं कर्माखिलं पार्थ!, ज्ञाने परिसमाप्यते॥ (४/३३)

विश्व-गुरु भगवान् श्रीकृष्ण पापियों के उद्धार-हेतु '**ज्ञान**' के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए **अर्जुन** से कहते हैं कि 'यदि तू सब पापियों से भी अधिक पाप करनेवाला है, तो भी तू '**ज्ञान**'-**रूपी नौका** द्वारा निस्सन्देह पाप-समुद्र से भली-भाँति तर जाएगा'—

अपि चेदसि पापेभ्यः, सर्वेभ्यः पाप-कृत्तमः।
सर्वं ज्ञान-प्लवेनैव, वृजिनं सन्तरिष्यसि॥ (४/३६)

इसके उपरान्त **विश्व-गुरु भगवान् श्रीकृष्ण**—'**ज्ञान**' और '**कर्म**' के सम्बन्ध में '**अग्नि**' और '**ईंधन**' से सादृश्य स्थापित करते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार प्रज्वलित '**अग्नि**' ईंधन को भस्म-प्राय कर देती है, वैसे ही '**ज्ञान**'-रूपी '**अग्नि**' ईंधन-रूपी '**कर्मों**' को भस्म-सात् कर देती है। यथा—

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन!
ज्ञानाग्निः सर्व-कर्माणि, भस्मसात् कुरुते तथा॥ (४/३७)

अन्त में **विश्व-गुरु भगवान् श्रीकृष्ण** कहते हैं कि इस संसार में '**ज्ञान**' के समान पवित्र करनेवाला निस्सन्देह कुछ भी नहीं है। '**ज्ञान**' को कितने ही काल से '**कर्म-योग**' के द्वारा शुद्ध अन्तःकरण हुआ मनुष्य अपने आप ही '**आत्मा**' में पा लेता है—

न हि ज्ञानेन सदृशं, पवित्रमिह विद्यते।
तत् स्वयं योग-संसिद्धः, कालेनात्मनि विन्दति॥ (४/३८)

२. '**ज्ञान**' **के साधन**—

'**श्रीगीता**' के १३वें अध्याय में '**ज्ञान**' के साधनों में '**नौ गुणों**' को मान्यता दी गई है। यथा—**१. श्रेष्ठता के अभिमान का अभाव, २. दम्भाचरण का अभाव, ३. अहिंसा, ४. क्षमा-भाव, ५. मन-वाणी की सरलता, ६. श्रद्धा-भक्ति-सहित गुरु की सेवा, ७. बाहर-भीतर की शुद्धि, ८. अन्तःकरण की स्थिरता, ९. मन-इन्द्रियों-सहित शरीर का निग्रह।** यथा—

अमानित्वमदम्भित्वहिंसा क्षान्तिरार्जवम्।
आचार्योपासनं शौचं, स्थैर्यमात्म-विनिग्रहः॥ (१३/७)

'**ज्ञान**' के साधनों में इस लोक और पर-लोक के सम्पूर्ण भोगों में **आसक्ति का अभाव, अहङ्कार का अभाव, जन्म-मृत्यु-जरा और रोग आदि में दुःख और दोषों का बार-बार विचार करना** भी सम्मिलित किया गया है। यथा—

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहङ्कार एव च।
जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधि, दुःख-दोषानुदर्शनम्॥ (१३/८)

'**ज्ञान**' के साधनों में सर्वाधिक महत्त्व **आसक्ति के अभाव** और '**चित्त**' **की समता** को दिया गया है—

असक्तिरनभिष्वङ्गः, पुत्र-दार-गृहादिषु।
नित्यं च सम-चित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु॥ (१३/९)

संक्षेप में, **ज्ञान-योगी महा-पुरुष**—**अनहङ्कारी, अनासक्त** व **सम-दर्शी** होता है। वह अपनी ही भाँति सब भूतों में **सम-भाव** रखता है। वह प्रिय को प्राप्त कर **हर्षित** नहीं होता, अप्रिय को प्राप्त कर **उद्विग्न** नहीं होता—

न प्रहृष्येत् प्रियं प्राप्य, नोद्विजेत् प्राप्य चाप्रियम्।
स्थिर-बुद्धिरसम्मूढो, ब्रह्म-विद् ब्रह्मणि स्थितः॥ (५/२०)

वह सुख-दुःख में भी **सम-भाव** रखनेवाला होने से परम श्रेष्ठ योगी माना जाता है—

आत्मौपम्येन सर्वत्र, समं पश्यति योऽर्जुन!
सुखं वा यदि वा दुःखं, स योगी परमो मतः॥ (६/३२)

ऐसे **सम-दृष्टि-वाले परम** '**ज्ञानी**' **पुरुष** विद्या और विनय-युक्त ब्राह्मण में तथा गौ, हाथी, कुत्ते और चाण्डाल में भी सम-दर्शी होते हैं—

विद्या-विनय-सम्पन्ने, ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च, पण्डिताः सम-दर्शिनः॥ (५/१८)

'**ज्ञान**' **के साधनों में** '**अध्यात्म-ज्ञान**' विशेष महत्त्व रखता है। इसीलिए '**अध्यात्म-ज्ञान**' को '**तत्त्व-ज्ञान**' की संज्ञा दी जाती है। इसके द्वारा '**आत्म-वस्तु**' और '**अनात्म-वस्तु**' के भेद को ठीक प्रकार से जाना जाता है। '**तत्त्व-ज्ञान**' के अर्थ-रूप '**परमात्मा**' को देखते रहने की नित्य स्थिति में

रहनेवाला '**तत्त्व-ज्ञानी**' समझा जाता है। '**ज्ञान**' के साधनों से विपरीत गुणों को '**अज्ञान**' की श्रेणी में रखा गया है—

अध्यात्म-ज्ञान-नित्यत्वं, तत्त्व-ज्ञानार्थ-दर्शनम्।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा॥ (१३/११)

३. 'ज्ञान' के त्रि-विध स्वरूप—

'**सात्त्विक ज्ञान**' से मनुष्य पृथक्-पृथक् सब भूतों में एक **अविनाशी** '**परमात्म-भाव**' को विभाग-रहित (**सम-भाव** से स्थित) देखता है।

सर्व-भूतेषु येनैकं, भावमव्ययमीक्षते।
अविभक्तं विभक्तेषु, तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम्॥ (१८/२०)

'**राजस ज्ञान**' के द्वारा मनुष्य सम्पूर्ण भूतों में भिन्न-भिन्न प्रकार के नाना '**भावों**' को अलग-अलग जानता है—

पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं, नाना-भावान् पृथग् विधान्।
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु, तज्ज्ञानं विद्धि राजसम्॥ (१८/२१)

'**तामस ज्ञान**' बिना युक्ति-वाला, तात्त्विक अर्थ से रहित उस '**तुच्छ-ज्ञान**' को कहते हैं, जो एक कार्य-रूप शरीर में ही सम्पूर्ण के सदृश आसक्त है अर्थात् यह वह '**विपरीत-ज्ञान**' है, जिसके द्वारा मनुष्य एक क्षण-भंगुर नाशवान् '**शरीर**' को ही '**आत्मा**' मानकर उसमें सर्वस्व की भाँति आसक्त रहता है—

यत् तु कृत्स्नवदेकस्मिन्, कार्ये सक्तमहैतुकम्।
अतत्त्वार्थ-वदल्पं च, तत् तामसमुदाहृतम्॥ (१८/२२)

❋❋❋

४. 'कर्म' के त्रि-विध स्वरूप

'कर्म-तत्त्व' सम्बन्धी परिचर्चा–

कर्म, अकर्म, विकम— '**श्रीगीता**' के द्वितीय अध्याय में '**कर्म-योग**' के स्वरूप का सूत्र-रूप में वर्णन करनेवाला श्लोक इस प्रकार है—

कर्मण्येवाधिकारस्ते, मा फलेषु कदाचन।
मा कर्म-फल-हेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥ (२/४७)

अर्थात् '**कर्म**' करने में ही तेरा अधिकार है, उसके '**फलों**' में कभी नहीं। इसलिए तू '**कर्मों**' के '**फल**' का हेतु मत हो तथा '**कर्म**' न करने में भी तेरी आसक्ति न हो।

'**श्रीगीता**' के चौथे अध्याय में **विश्व-गुरु भगवान् श्रीकृष्ण, अर्जुन** को '**कर्म, अकर्म**' और '**विकर्म**' के स्वरूप को भली-भाँति समझने की प्रेरणा देते हुए कहते हैं कि '**कर्म**' **क्या है?** '**अकर्म**'

क्या है? इसका निर्णय करने में बुद्धिमान पुरुष भी मोहित हो जाते हैं, इसलिए '**कर्म-बन्धन**' से मुक्त होने के लिए '**कर्म-तत्त्व**' को भली-भाँति समझना चाहिए। '**कर्म का स्वरूप**' भी जानना चाहिए, '**अकर्म का स्वरूप**' भी जानना चाहिए तथा '**विकर्म का स्वरूप**' भी जानना चाहिए क्योंकि '**कर्म की गति**' गहन है—

किं कर्म किमकर्मेति, कवयोऽप्यत्र मोहिताः।
तत् ते कर्म प्रवक्ष्यामि, यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्॥ (४/१६)

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं, बोद्धव्यं च विकर्मणः।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं, गहना कर्मणो गतिः॥ (४/१७)

जो मनुष्य '**कर्म**' में '**अकर्म**' देखता है और '**अकर्म**' में '**कर्म**', वही वास्तव में बुद्धिमान् है—'**कर्म-योगी**' है और समस्त '**कर्मों**' को करनेवाला है—

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः।
स बुद्धिमान् मनुष्येषु, स युक्तः कृत्स्न-कर्म-कृत्॥ (४/१८)

'**श्री-गीता**' के पाँचवें अध्याय का आरम्भ **अर्जुन** द्वारा **विश्व-गुरु भगवान् श्रीकृष्ण** से '**कर्म-संन्यास**' एवं '**कर्म-योग**' से सम्बन्धित प्रश्न से होता है—आपने '**कर्म-संन्यास**' की और फिर '**कर्म-योग**' की प्रशंसा की है, किन्तु इन दोनों में से जो मेरे लिए कल्याण-कारक साधन हो, वह एक निश्चित करके मुझे बताएँ—

संन्यासं कर्मणां कृष्ण!, पुनर्योगं च शंससि।
यच्छ्रेय एतयोरेकं, तन्मे ब्रूहि सु-निश्चितम्॥ (५/१)

श्रीकृष्ण ने दोनों को परम कल्याण-कारी बताते हुए कहा कि उन दोनों में भी '**कर्म-योग**' साधन में सुगम होने से श्रेष्ठ है—

संन्यासः कर्म-योगश्च, निःश्रेयस-करावुभौ।
तयोस्तु कर्म-संन्यासात्, कर्म-योगो विशिष्यते॥ (५/२)

'**कर्म-संन्यास**' में '**मन, इन्द्रियों**' और '**शरीर**' द्वारा होनेवाले सम्पूर्ण '**कर्मों**' में '**कर्त्ता-पन**' का त्याग किया जाता है, जब कि '**कर्म-योग**' में '**समत्व-बुद्धि**' से **भगवदर्थ** '**कर्मों**' को किया जाता है। **विश्व-गुरु भगवान् श्रीकृष्ण** कहते हैं कि '**कर्म-योगी**' भी '**संन्यासी**' समझा जाने योग्य है। पण्डित-जन '**संन्यासी**' और निष्काम '**कर्म-योगी**' में कोई भेद इसीलिए नहीं करते हैं कि अपने '**फल**' में दोनों ही '**एक-रूप**' होते हैं अर्थात् '**सांख्य-योगी**' और '**कर्म-योगी**'—दोनों ही अन्ततोगत्वा '**परमात्मा**' को प्राप्त होते हैं। फिर भी '**कर्म-योग**' के बिना '**संन्यास**' प्राप्त होना कठिन है—

साङ्ख्य-योगौ पृथग् बालाः, प्रवदन्ति न पण्डिताः।
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम्॥ (५/४)

'**कर्म-योगी**'—**जितेन्द्रिय** होता है। अपने '**मन**' को अपने वश में रखता है। वह **विशुद्ध अन्तः-करण**-वाला होता है। सम्पूर्ण प्राणियों को '**आत्म-रूप**' देखता है। '**कर्म**' करता हुआ भी '**निर्लिप्त**' भाव-वाला होता है—

योग-युक्तो विशुद्धात्मा, विजितात्मा जितेन्द्रियः।
सर्व-भूतात्म-भूतात्मा, कुर्वन्नपि न लिप्यते॥ (५/७)

'**सांख्य-योगी**'—**तत्त्व को जाननेवाला** होता है। वह देखता हुआ, सुनता हुआ, स्पर्श करता हुआ, सूँघता हुआ, भोजन करता हुआ, गमन करता हुआ, सोता हुआ, श्वास लेता हुआ, बोलता हुआ, त्यागता हुआ, ग्रहण करता हुआ तथा आँखों को खोलता और मूँदता हुआ भी—सब '**इन्द्रियाँ**' अपने-अपने '**अर्थों**' में बरत रही हैं—इस प्रकार समझकर ऐसा मानता है कि वह कुछ भी नहीं कर रहा है—

नैव किञ्चित् करोमीति, युक्तो मन्येत तत्त्व-वित्।
पश्यञ्शृण्वन् स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन् गच्छन् स्वपञ्श्वसन्॥ (५/८)
प्रलपन् विसृजन् गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु, वर्तन्त इति धारयन्॥ (५/९)

यहाँ '**कर्म**'-सम्बन्धी उपर्युक्त छोटी-सी परिचर्चा इस बात को स्पष्ट करने के लिए की गई है कि '**श्री गीता**' में किसी भी '**मार्ग**' अथवा '**निष्ठा**' की '**सिद्धि**' हेतु, चाहे वह '**ज्ञान-योगियों**' की '**सांख्य-निष्ठा**' हो अथवा '**कर्म-योगियों**' की '**योग-निष्ठा**', स्वरूप से '**कर्मों के त्याग का निषेध**' किया गया है। वैसे भी स्वरूप से '**कर्मों का सर्वथा त्याग**' हो भी नहीं सकता क्योंकि, कोई भी मनुष्य किसी काल में क्षण-मात्र के लिए भी बिना '**कर्म**' किए नहीं रह सकता। सारा मनुष्य-समुदाय **प्रकृति**-जनित '**गुणों**' द्वारा पर-वश हुआ '**कर्म**' करने के लिए बाध्य किया जाता है—

न हि कश्चित् क्षणमपि, जातु तिष्ठत्यकर्म-कृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म, सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः॥ (३/५)

'**श्री गीता**' के १८वें अध्याय में '**कर्म के तीन प्रेरणा-स्रोतों**' की चर्चा की गई है— **१. ज्ञान, २. ज्ञेय एवं ३. परिज्ञाता।** जो जाना जाए, उसका नाम '**ज्ञान**' है। जिस वस्तु को जाना जाए, वह '**ज्ञेय**' है। जाननेवाले या ज्ञान रखनेवाले का नाम '**परिज्ञाता**' है। इसी के साथ '**कर्म-संग्रह के तीन प्रकार**' बताए गए हैं— **१. कर्त्ता, २. कर्म, ३. करण।** '**कर्म**' करनेवाले का नाम '**कर्त्ता**' है, जिन-जिन '**इन्द्रियों**' या '**साधनों**' द्वारा '**कर्म**' किए जाते हैं, उनका नाम '**करण**' है और करने का नाम '**कर्म**' या '**क्रिया**' है—

ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता, त्रि-विधा कर्म-चोदना।
करणं कर्म कर्त्तेति, त्रि-विधः कर्म-संग्रहः॥ (१८/१८)

जो मनुष्य '**कर्मों**' में और उनके फल में '**आसक्ति**' का सर्वथा '**त्याग**' करके संसार के आश्रय से रहित, '**परमात्मा**' में नित्य-तृप्त है, वह '**कर्मों**' में भली-भाँति बरतता हुआ भी वास्तव में कुछ भी नहीं करता—

त्यक्त्वा कर्म-फलासङ्गं, नित्य-तृप्तो निराश्रयः।
कर्मण्यभि-प्रवृत्तोऽपि, नैव किञ्चित् करोति सः॥ (४/२०)

'**निष्काम कर्म-योग**' का साधक बिना इच्छा के अपने आप प्राप्त हुए '**पदार्थ**' में सदा सन्तुष्ट रहता है। वह ईर्ष्या, हर्ष, शोकादि '**द्वन्द्वों**' से परे, '**सिद्धि**' और '**असिद्धि**' में सम-भाव रखनेवाला '**कर्म-योगी**' है, जो '**कर्म**' करता हुआ भी उनसे नहीं बँधता—

यदृच्छा-लाभ-सन्तुष्टो, द्वन्द्वातीतो विमत्सरः।
समः सिद्धावसिद्धौ च, कृत्वाऽपि न निबध्यते॥ (४/२२)

'**श्रीगीता**' के छठे अध्याय के प्रथम श्लोक में '**निष्काम कर्म-योगी**' की प्रशंसा करते हुए **विश्व-गुरु भगवान् श्रीकृष्ण** कहते हैं कि 'जो पुरुष '**कर्म-फल**' का आश्रय न लेकर करने योग्य '**कर्म**' करता है, वह '**संन्यासी**' तथा '**योगी**' है। केवल '**अग्नि**' का त्याग करनेवाले और केवल '**क्रियाओं**' का त्याग करनेवाले को '**संन्यासी**' नहीं मानना चाहिए'—

अनाश्रितः कर्म-फलं, कार्यं कर्म करोति यः।
स संन्यासी च योगी च, न निरग्निर्न चाक्रियः॥ (६/१)

'**श्री गीता**' में **विश्व-गुरु भगवान् श्रीकृष्ण** ने **अर्जुन** को '**निष्काम कर्म**' करते रहने के सम्बन्ध में तीन महत्त्व-पूर्ण आदेश भी दिए हैं—

(१) '**कर्म**'—**अकर्म से श्रेष्ठ** है किन्तु '**कर्म**' शास्त्र-विहित होना चाहिए। दूसरे शब्दों में, शास्त्र-विहित नियत '**कर्मों**' को '**कर्त्तव्य-कर्म**' समझकर करते रहना, '**कर्म**' न करने की अपेक्षा श्रेष्ठ है क्योंकि '**कर्म**' न करने से शरीर-निर्वाह भी असम्भव हो जाता है—

नियतं कुरु कर्म त्वं, कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीर-यात्राऽपि च ते, न प्रसिद्ध्येदकर्मणः॥ (३/८)

(२) **स्व-धर्म-पालन**—कर्त्तव्य-'**कर्म**' में निरत मनुष्यों को '**स्व-धर्म**' का पालन करना चाहिए क्योंकि अच्छी प्रकार आचरण किए हुए दूसरे के '**धर्म**' (**पर-धर्म**) से अपना '**धर्म**' (**स्व-धर्म**) ही श्रेष्ठ समझना चाहिए। '**स्व-धर्म**'-रूप '**कर्मों**' को करता हुआ मनुष्य पाप को नहीं प्राप्त होता—

श्रेयान् स्व-धर्मो विगुणः, पर-धर्मात् स्वनुष्ठितात्।
स्वभाव-नियतं कर्म, कुर्वन्नाप्नोति किल्विषम्॥ (१८/४७)

इसी तथ्य को '**श्रीगीता**' के '**कर्म-योग**' नामक तीसरे अध्याय में भी कहा गया है कि अपने '**धर्म**' में मरना भी कल्याण-कारक होता है, जब कि दूसरे का '**धर्म**' भय को देनेवाला होता है—

श्रेयान् स्व-धर्मो विगुणः, पर-धर्मात् स्वनुष्ठितात्।
स्व-धर्मे निधनं श्रेयः, पर-धर्मो भयावहः॥ (३/३५)

(३) '**स्व-धर्म**' सहज रूप से कर्म-दोष-युक्त होने पर भी उसे त्यागना नहीं चाहिए क्योंकि '**धुएँ**' से आवृत्त '**अग्नि**' की भाँति सभी '**कर्म**' किसी-न-किसी दोष से युक्त हैं—

सहजं कर्म कौन्तेय!, स-दोषमपि न त्यजेत्।
सर्वारम्भा ही दोषेण, धूमेनाग्निरिवावृताः॥ (१८/४८)

कर्म' के त्रि-विध स्वरूप–

'**कर्म**' के सम्बन्ध में उपर्युक्त प्रासङ्गिक चर्चा के उपरान्त '**श्रीगीता**' के १८वें अध्याय में वर्णित '**कर्म**' **के त्रि-विध स्वरूपों** की चर्चा बोध-गम्य हो जाती है— **१. सात्त्विक कर्म, २. राजस कर्म, ३. तामस कर्म।**

सात्त्विक कर्म—उसे कहा जाता है, जो '**शास्त्र-विधि**' से नियत किया गया है और '**कर्त्तापन**' के '**अभिमान**' से रहित होता है, जो '**फल**' न चाहनेवाले पुरुष द्वारा बिना '**राग-द्वेष**' के किया जाता है—

नियतं सङ्ग-रहितमराग-द्वेषतः कृतम्।
अफल-प्रेप्सुना कर्म, यत्तत् सात्त्विकमुच्यते॥ (१८/२३)

राजस कर्म—उसे कहा गया है, जो बहुत '**परिश्रम**' से युक्त होता है तथा जो '**भोगों**' को चाहनेवाले '**अहङ्कार-युक्त पुरुष**' द्वारा किया जाता है—

यत्तु कामेप्सुना कर्म, साहङ्कारेण वा पुनः।
क्रियते बहुलायासं, तद्-राजसमुदाहृतम्॥ (१८/२४)

तामस कर्म—उक्त '**कर्मों**' के विपरीत जो '**कर्म**' परिणाम, हानि, हिंसा और सामर्थ्य का विचार किए बिना केवल **अज्ञान** से आरम्भ किया जाता है, वह कर्म '**तामस**' कहा जाता है—

अनुबन्धं क्षयं हिंसामनवेक्ष्य च पौरुषम्।
मोहादारभ्यते कर्म, यत् तत्तामसमुच्यते॥ (१८/२५)

'**कर्म-फल**' **के त्रि-विध स्वरूप**—तीनों प्रकार के '**कर्मों**' के फल भी '**तीन**' भिन्न प्रकार के होते हैं। '**सात्त्विक-कर्म**' का फल '**निर्मल**' होता है अर्थात् वे सुख-वैराग्य आदि प्राप्त कराते हैं। '**राजस-कर्म**' का फल **लोभ-प्रद** एवं '**दुःख-दायी**' होता है। '**तामस-कर्म**' का फल **प्रमाद, मोह** एवं '**अज्ञान**' कहा गया है—

कर्मणः सु-कृतस्याहुः, सात्त्विकं निर्मलं फलम्।
रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम्॥ (१४/१६)

❋❋❋

५. 'कर्त्ता' के त्रि-विध स्वरूप

सात्त्विक कर्त्ता—जो '**कर्त्ता**' सङ्ग-रहित है, अहङ्कार के वचन न बोलनेवाला '**धैर्य**' और '**उत्साह**' से युक्त है, जो '**कार्य**' के सिद्ध होने या न होने में '**हर्ष-शोकादि**' विकारों से रहित है, वह '**सात्त्विक**' कहा जाता है—

मुक्त-सङ्गोऽनहं-वादी, धृत्युत्साह-समन्वितः।
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारः, कर्त्ता सात्त्विक उच्यते॥ (१८/२६)

राजस कर्त्ता—जो '**कर्त्ता**', '**आसक्ति**' से युक्त है, '**कर्मों**' के '**फल**' को चाहनेवाला है, '**लोभी**' है, दूसरों को '**कष्ट**' देने के स्वभाववाला है, '**अशुद्धाचारी**' है, '**हर्ष-शोक**' से लिप्त रहता है, वह '**राजस**' कहा जाता है—

रागी कर्म-फल-प्रेप्सुर्लुब्धो हिंसात्मकोऽशुचिः।
हर्ष-शोकान्वितः कर्त्ता, राजसः परिकीर्तितः॥ (१८/२७)

तामस कर्त्ता —जो '**कर्त्ता**' अयुक्त है, '**शिक्षा**' से रहित है, '**घमण्डी**' है, '**धूर्त्त**' है, जो दूसरों की '**जीविका का नाश**' करनेवाला है, '**शोक**' करनेवाला है, '**आलसी**' व '**दीर्घ-सूत्री**' है अर्थात् जो थोड़े काल में होनेवाले साधारण कार्य को भी '**फिर कर लेंगे**'—ऐसा सोचकर बहुत काल तक कोई कार्य पूरा नहीं करता, वह '**तामस**' कहा जाता है—

अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः, शठो नैष्कृतिकोऽलसः।
विषादी दीर्घ-सूत्री च, कर्त्ता तामस उच्यते॥ (१८/२८)

इस प्रकार '**राजसी**' व '**तामसी कर्त्ता**', '**सात्त्विक कर्त्ता**' के सर्वथा विपरीत स्वभाववाला होता है। '**राजसी**' एवं '**तामसी कर्त्ता**'—'**अहङ्कारी**' एवं '**विमूढ़ात्मा**' होते हैं। यद्यपि सम्पूर्ण '**कर्म**' सर्व-प्रकार '**प्रकृति**' के गुणों द्वारा किए जाते हैं, तो भी वह '**मैं कर्त्ता हूँ**' के भाव से सदा विमोहित रहता है—

प्रकृतेः क्रियमाणानि, गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहङ्कार-विमूढात्मा, कर्त्ताऽहमिति मन्यते॥ (३/२७)

'**सात्त्विक कर्त्ता**'—'**आसक्ति**' को त्याग कर सदा '**भगवदर्पण-बुद्धि**' से '**कर्म**' करनेवाला होता है अर्थात् वह अपने सब '**कर्मों**' को '**परमात्मा**' में अर्पण करके करता है। इसलिए वह इस संसार में '**कर्म**' करता हुआ भी '**जल**' से '**कमल**' के पत्ते की भाँति '**पाप**' से लिप्त नहीं होता—

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि, सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन, पद्म-पत्रमिवाम्भसा॥ (५/१०)

❋❋❋

६. 'त्याग' के त्रि-विध स्वरूप

'**श्रीगीता**' के १८वें अध्याय के प्रारम्भ में **विश्व-गुरु भगवान् श्रीकृष्ण जी** से **अर्जुन** अनुरोध करते हैं कि वे '**संन्यास**' व '**त्याग**' के '**तत्त्व-भेद**' को पृथक्-पृथक् स्पष्ट करें। इस पर **विश्व-गुरु भगवान् श्रीकृष्ण जी** पहले '**त्याग**' के विषय में प्रचलित चार मतों का उल्लेख करते हैं। यथा—

(१) पण्डित-जन '**काम्य-कर्मों**' के '**त्याग**' को '**संन्यास**' समझते हैं। '**काम्य-कर्म**' उन '**कर्मों**' को कहा जाता है, जो स्त्री, पुत्र आदि प्रिय वस्तुओं की प्राप्ति के लिए तथा

सङ्कटादि '**रोग**' की निवृत्ति के लिए किए जाते हैं—जैसे '**यज्ञ, दान, तप, उपासना**' आदि।

(२) कुछ विचार-कुशल पुरुष सब कर्त्तव्य-'**कर्मों**' के फल के '**त्याग**' को '**त्याग**' मानते हैं—

काम्यानां कर्मणां न्यासं, संन्यासं कवयो विदुः।
सर्व-कर्म-फल-त्यागं, प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः॥ (१८/२)

(३) कई विद्वान् '**कर्म-मात्र**' को दोष-पूर्ण मानकर उन्हें ही त्यागने योग्य समझते हैं।

(४) अन्य विद्वानों के अनुसार '**यज्ञ, दान**' और '**तपादि**' को '**कर्त्तव्य-कर्म**' मानकर करते रहना चाहिए क्योंकि ये कर्म बुद्धिमान् पुरुषों को पवित्र करनेवाले होते हैं, इसलिए त्यागने योग्य नहीं हैं—

त्याज्यं दोष-वदित्येके, कर्म प्राहुर्मनीषिणः।
यज्ञ-दान-तपः-कर्म, न त्याज्यमिति चापरे॥ (१८/३)

सात्त्विक त्याग—

विश्व-गुरु भगवान् श्रीकृष्ण इसी सन्दर्भ में '**त्याग**' की उक्त '**द्वितीय**' एवं '**चतुर्थ**' मान्यताओं का समन्वय करते हुए '**त्याग**' **के त्रि-विध स्वरूपों** को आख्यायित करते हैं। उनके मतानुसार '**यज्ञ, दान, तपादि**' सम्पूर्ण '**कर्त्तव्य-कर्मों**' में '**आसक्ति**' और '**फलों**' के '**त्याग**' को ही उत्तम समझना चाहिए। ऐसा '**त्याग**' ही '**सात्त्विक**' माना जाता है—

एतान्यपि तु कर्माणि, सङ्गं त्यक्त्वा फलानि च।
कर्त्तव्यानीति मे पार्थ!, निश्चितं मतमुत्तमम्॥ (१८/६)

कार्यमित्येव यत्-कर्म, नियतं क्रियतेऽर्जुन!
सङ्गं त्यक्त्वा फलं चैव, स त्यागः सात्त्विको मतः॥ (१८/९)

ऐसे '**सात्त्विक**' त्याग करनेवाले पुरुष को ही '**सात्त्विक**' त्यागी समझना चाहिए। इस दृष्टि-कोण को अधिक स्पष्ट करते हुए **विश्व-गुरु भगवान् श्रीकृष्ण जी** ने इस सत्य को भी स्वीकार किया कि शरीर-धारी किसी भी मनुष्य के लिए सम्पूर्णता से सब '**कर्मों का त्याग**' किया जाना '**शक्य**' या '**सम्भव**' नहीं है। जो '**कर्म-फल का त्यागी**' है, उसी को '**सात्त्विक त्यागी**' माना जाना चाहिए—

न हि देह-भृता शक्यं, त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः।
यस्तु कर्म-फल-त्यागी, स त्यागीत्यभिधीयते॥ (१८/११)

ऐसा '**सात्त्विक त्यागी**' न तो '**अकुशल कर्मों**' से द्वेष करता है और न ही '**कुशल कर्मों**' में आसक्त होता है। वह शुद्ध '**सत्त्व-गुण**' से युक्त पुरुष संशय-रहित बुद्धिमान् होता है—

न द्वेष्ट्यकुशलं कर्म, कुशले नानुषज्जते।
त्यागी सत्त्व-समाविष्टो, मेधावी छिन्न-संशयः॥ (१८/१०)

राजस त्याग—

जो मनुष्य '**कर्मों**' को '**दुःख**'-रूप समझकर उनका '**त्याग**' करता है अथवा जो '**कर्त्तव्य-कर्मों**' को **शारीरिक कष्ट** के भय से उनका '**त्याग**' करता है, वह '**राजस त्यागी**' समझा जाना चाहिए। ऐसा '**राजस त्यागी**' त्याग करके '**त्याग**' के फल को किसी प्रकार भी नहीं पाता—

दुःखमित्येव यत्-कर्म, काय-क्लेश-भया त्यजेत्।
स कृत्वा राजसं त्यागं, नैव त्याग-फलं लभेत्॥ (१८/८)

तामस त्याग—

इसीलिए **विश्व-गुरु भगवान् श्रीकृष्ण** अपने निश्चित मत को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि नियत कर्मों का स्वरूप से '**त्याग**' उचित नहीं है, जब कि '**निषिद्ध**' और '**काम्य-कर्मों**' का स्वरूप से '**त्याग**' करना उचित हो सकता है, किन्तु '**मोह**' के कारण '**नियत कर्मों के त्याग**' को '**तामस त्याग**' समझना चाहिए—

नियतस्य तु संन्यासः, कर्मणो नोपपद्यते।
मोहात् तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः॥ (१८/७)

'**कर्म-फल**' के '**त्रि-विध**' रूप—

'**त्याग**' के **त्रि-विध स्वरूप** की चर्चा के उपरान्त '**कर्म-फल**' को भी '**तीन प्रकार**' का बताया गया है—(१) **अच्छा (इष्टम्)**, (२) **बुरा (अनिष्टम्)**, (३) **मिश्रित (मिश्र)**। इन '**तीनों प्रकार**' के '**कर्म-फल**' का त्याग न करनेवाले मनुष्यों को उनकी मृत्यु के उपरान्त '**फल**' मिलता है, जब कि '**कर्म-फल**' का '**त्याग**' करनेवाले '**सात्त्विक त्यागी**' को उनके कर्मों का '**फल**' किसी काल में भी नहीं होता—

अनिष्टमिष्टं मिश्रं च, त्रि-विधं कर्मणः फलम्।
भवत्यत्यागिनां प्रेत्य, न तु संन्यासिनां क्वचित्॥ (१८/१२)

❋❋❋

७. '**बुद्धि**' के त्रि-विध स्वरूप

'**श्रीगीता**' के १८वें अध्याय में '**गुणों**' के आधार पर '**बुद्धि**' के '**तीन भेद**' किए गए हैं—(१) **सात्त्विकी**, (२) **राजसी** एवं (३) **तामसी**।

सात्त्विकी बुद्धि—

जो बुद्धि '**प्रवृत्ति**' और '**निवृत्ति**' मार्गों को यथार्थ रूप से समझती है, जो '**कर्तव्य**' और '**अकर्त्तव्य**' को, '**भय**' और '**अभय**' को तथा '**बन्धन**' और '**मोक्ष**' को यथार्थ रूप से जानती है, वह बुद्धि '**सात्त्विकी**' है। '**प्रवृत्ति-मार्ग**'-वाले गृहस्थ होते हुए भी '**फल**' और '**आसक्ति**' को त्याग कर **राजा जनक** की भाँति लोक-शिक्षा के लिए ही सब कुछ '**भगवदर्पण**' करके बरतते हैं। '**निवृत्ति-**

मार्ग'-वाले संसार से उपराम ले '**संन्यासी**' होते हैं, जो **श्री शुकदेव** और **सनकादियों** की भाँति '**देहाभिमान**' को त्याग कर केवल '**सच्चिदानन्द-घन परमात्मा**' में एकी-भाव से स्थित होते हैं—

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च, कार्याकार्ये भयाभये।
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति, बुद्धिः सा पार्थ! सात्त्विकी॥ (१८/३०)

राजसी बुद्धि—

मनुष्य जिस बुद्धि के द्वारा '**धर्म**' और '**अधर्म**' को, '**कर्त्तव्य**' और '**अकर्त्तव्य**' को यथार्थ रूप से नहीं जान पाता, वह बुद्धि '**राजसी**' है—

यया धर्ममधर्मं च, कार्यं चाकार्यमेव च।
अयथावत् प्रजानाति, बुद्धिः सा पार्थ! राजसी॥ (१८/३१)

तामसी बुद्धि—

जो बुद्धि '**तामस गुण**' से घिरी हुई '**अधर्म**' को भी '**यह धर्म है**'—ऐसा मान लेती है तथा जो जगत् के सम्पूर्ण पदार्थों के प्रति सदा '**विपरीत-भाव**' ही रखती है, वह बुद्धि '**तामसी**' है—

अधर्मं धर्ममिति या, मन्यते तमसावृता।
सर्वार्थान् विपरीतांश्च, बुद्धिः सा पार्थ! तामसी॥ (१८/३२)

❋❋❋

८. '**धृति**' के त्रि-विध स्वरूप

'**श्रीगीता**' में '**गुणों**' के आधार पर '**धृति**' अथवा '**धारणा-शक्ति**' के भी '**तीन भेद**' किए गए हैं— (१) **सात्त्विकी**, (२) **राजसी** एवं (३) **तामसी**।

सात्त्विकी धृति—

जिस मनुष्य की '**धृति**' अथवा धारण-शक्ति '**अव्यभिचारिणी**' है अर्थात् जो **भगवद्-विषय** के अतिरिक्त अन्य **सांसारिक विषयों** के धारण करने के '**व्यभिचार-दोष**' से अपने को मुक्त रख सकता है, जो '**ध्यान-योग**' के द्वारा मन, प्राण और इन्द्रियों की क्रियाओं को '**भगवत्-प्राप्ति**' के लिए धारण करता है अर्थात् जो **भजन, ध्यान** और **निष्काम कर्मों** तक ही अपनी समस्त क्रियाओं को केन्द्रित रखता है, उसकी '**धृति सात्त्विकी**' है।

धृत्या यया धारयते, मनः प्राणेन्द्रिय-क्रियाः।
योगेनाव्यभिचारिण्या, धृतिः सा पार्थ! सात्त्विकी॥ (१८/३३)

राजसी धृति—

जो मनुष्य '**फल**' की इच्छावाला है और जिस '**धारणा-शक्ति**' के द्वारा वह **धर्म, अर्थ** और **काम** को धारण करता है, वह '**धृति राजसी**' है—

यया तु धर्म-कामार्थान्, धृत्या धारयतेऽर्जुन!
प्रसङ्गेन फलाकाङ्क्षी, धृतिः सा पार्थ! राजसी॥ (१८/३४)

तामसी धृति—

इसके विपरीत '**तामसी**' धारणा-शक्तिवाला मनुष्य दुष्ट बुद्धिवाला होता है। वह **निद्रा, भय, चिन्ता (शोक-विषाद), दुःख** और **उन्मत्तता** आदि दुर्गुणों को छोड़ता नहीं, अपितु उन्हें ही '**धारण**' किए रहता है। ऐसी '**धारणा-शक्ति**'—'**तामसी धृति**' होती है—

यया स्वप्नं भयं शोकं, विषादं मदमेव च।
न विमुञ्चति दुर्मेधा, धृतिः सा पार्थ! तामसी॥ (१८/३५)

❋❋❋

९. 'सुख' के त्रि-विध स्वरूप

'**श्रीगीता**' के १८वें अध्याय में '**बुद्धि**' एवं '**धृति**' के '**त्रि-विध**' भेदों के उपरान्त, '**तीनों गुणों**' के अनुसार '**सुख**' के भी '**तीन भेदों**' को सुनाने के लिए **विश्व-गुरु भगवान् श्रीकृष्ण, अर्जुन** को आज्ञा देते हुए कहते हैं कि जिस '**सुख**' की प्राप्ति में पृथ्वी, आकाश व देव-लोक का कोई भी '**सत्त्व**' अपने को मुक्त नहीं कर पाता है, उसके भी '**तीन स्वरूप**' होते हैं—**(१) सात्त्विक सुख, (२) राजस सुख, (३) तामस सुख।**

सुखं त्विदानीं त्रि-विधं, शृणु मे भरतर्षभ!
अभ्यासाद् रमते यत्र, दुःखान्तं च निगच्छति॥ (१८/३६)

सात्त्विक सुख—

उस '**सुख**' को कहते हैं, जिसमें रमण करता हुआ साधक निरन्तर **भजन, ध्यान** और **सेवादि सद्-गुणों का अभ्यास** करता रहता है, जिससे वह अपने सांसारिक दुःखों के अन्त को प्राप्त कर सके। यह '**सुख**'—'**परमात्मा-विषयक बुद्धि के प्रसाद से उत्पन्न होनेवाला सुख**' है, जो अपने आरम्भ-काल में यद्यपि '**विष-तुल्य**' प्रतीत होता है, किन्तु अपने परिणाम में वस्तुतः '**अमृत-तुल्य**' होता है। उदाहरणार्थ—जिस प्रकार खेल में आसक्त मूढ़ बालकों को '**विद्याभ्यास**' प्रारम्भ में '**विष-तुल्य**' प्रतीत होता है, उसी प्रकार '**विषयों**' (भोगों) में '**आसक्त**' पुरुषों को '**भगवद्-भजन, ध्यान, सेवा**' आदि साधनों का अभ्यास (उनका समुचित अर्थ न जानने के कारण) '**विष-तुल्य**' प्रतीत होता है—

यत्तदग्रे विषमिव, परिणामेऽमृतोपमम्।
तत्-सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्म-बुद्धि-प्रसादजम्॥ (१८/३७)

राजस सुख—

उस '**सुख**' को कहते हैं, जो '**विषय**' और '**इन्द्रियों**' के संयोग से प्राप्त होता है। यह '**सुख**' प्रारम्भ में या भोग-काल में '**अमृत-तुल्य**' प्रतीत होता है, किन्तु अपने परिणाम में यह '**विष-तुल्य**' होता है। ऐसा '**सुख**'—'**बल, बुद्धि, वीर्य, धन, उत्साह** और **पर-लोक का नाशक**' भी माना जाता है—

विषयेन्द्रिय-संयोगाद्, यत् तदग्रेऽमृतोपमम्।
परिणामे विषमिव, तत्-सुखं राजसं स्मृतम्॥ (१८/३८)

तामसिक सुख—

उस '**सुख**' को कहते हैं, जो **निद्रा, आलस्य** और **प्रमाद** जैसे **तामसी गुणों** से उत्पन्न होने के कारण प्रारम्भ से अन्त तक '**आत्मा**' को '**मोहित**' करनेवाले होते हैं अर्थात् '**तामसी सुख**' अपने भोग-काल में तथा परिणाम में भी '**आत्मा**' को '**मोहित**' करनेवाला होता है।

❋❋❋

१०. विश्व-गुरु भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा वर्णित त्रयात्मक ज्ञान का माहात्म्य

पाठकों के सम्मुख यहाँ '**श्रीगीता**' में आख्यायित **गुण, श्रद्धा, ज्ञान, कर्म, कर्त्ता, त्याग, बुद्धि, धृति** एवं **सुख** जैसे तत्त्वों के '**त्रि-विध स्वरूपों**' का निरूपण अति संक्षेप में करने का प्रयास किया गया है। श्रद्धा के साथ ही **आहार, यज्ञ, दान** और **तप** के भी '**तीन-तीन**' प्रकार बताए गए हैं। '**तप**' के '**त्रि-विध स्वरूपों**' को दो दृष्टि-कोणों से दर्शाया गया है—(१) '**तप**' शारीरिक, वाणी-सम्बन्धी एवं मानसिक होता है। (२) यह **सात्त्विक, राजसी** व **तामसी** भी होता है।

इन विभिन्न रूपों व प्रकारों को पाठकों के समक्ष इसलिए प्रस्तुत किया गया है कि उन्हें '**गीता-दर्शन**' में रुचि लेने व उसमें गहरे पैठने की प्रेरणा मिले। हमारा झुकाव व रुझान जीवन के प्रत्येक क्रिया-कलापों में '**सात्त्विकता**' की ओर हो, तो आज का '**भौतिक-वादी**' सङ्घर्ष-मय जीवन स्वत: ही '**सुख**' एवं **शान्ति**-पूर्ण हो जाएगा। '**विश्व-बन्धुत्व**' एवं '**वसुधैव कुटुम्बकम्**' जैसे उदार दर्शन हमारी '**जीवन-शैली**' के अभिन्न अङ्ग के रूप में स्वत: ही आत्म-सात् किए जा सकेंगे।

आज '**आतङ्कवाद**' से त्रस्त विश्व में '**विज्ञान**' की उपलब्धियों को **स्वार्थ-परक, ध्वंसात्मक** एवं **प्रति-स्पर्धात्मक** प्रवृत्तियों की ओर ले जाया जा रहा है, जब कि '**विज्ञान**' की उपलब्धियों का उपयोग '**रचनात्मक**' एवं '**विकासोन्मुखी**' होना चाहिए। '**बहु-जन-हिताय बहु-जन-सुखाय**' और '**अन्त्योदय**' जैसे स्वप्नों को साकार करने के लिए हमें अपने नित्य-प्रति के जीवन में '**अध्यात्म-ज्ञान**' में रुचि लेकर अपने गन्तव्य में गुणात्मक वृद्धि भी करनी होगी।

जब '**कुरु-क्षेत्र**' की रण-भूमि में शोक-सन्तप्त **अर्जुन** वाण-सहित धनुष को त्याग कर रथ के पिछले भाग में बैठ गए, तब **श्री भगवान्** उन्हें '**कर्त्तव्य-निष्ठ**' निष्काम-'**कर्म-योगी**' बनकर '**निश्चयात्मक बुद्धि**' धारण करने— युद्ध करने का उपदेश व आज्ञा देते हैं। '**श्रीगीता**' के '**ज्ञान-कर्म-संन्यास-योग**' नामक अध्याय ४ में **विश्व-गुरु भगवान् श्रीकृष्ण, अर्जुन** से कहते हैं—

तस्मादज्ञान-सम्भूतं, हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मन:।
छित्त्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत!॥ (४/४२)

अर्थात् हमें अपने '**हृदय**' में स्थित अज्ञान-जनित '**संशय**' का **विवेक-ज्ञान**-रूपी तलवार से छेदन करके **समत्व-रूप** '**कर्म-योग**' में स्थित रहना चाहिए। हमें अपने ही भीतर छिपे **अहङ्कार, क्रोध, लोभ, मोह, स्वार्थ** जैसे घातक शत्रुओं से अपने को सावधान रखकर, उनसे सतत युद्ध करना चाहिए।

हमें '**योगारूढ़**' अवस्था के लिए अपने को नित्य-प्रति प्रोत्साहित करना चाहिए। अपने द्वारा अपना उद्धार करना चाहिए, अपने को अधो-गति में न डालना चाहिए क्योंकि '**हम**' अपने ही '**मित्र**' हैं—अपने ही '**शत्रु**' हैं। हमें अपने '**विचारों**' को '**विशुद्ध**' करना चाहिए। इसी बात को '**श्रीगीता**' के '**आत्म-संयम-योग**' नामक छठे अध्याय में **विश्व-गुरु भगवान् श्रीकृष्ण** ने **अर्जुन** से कहा है—

उद्धरेदात्मनात्मानं, नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥ (६/५)

आज के युग को हम '**अन्तर्राष्ट्रीयता का युग**' मानकर जीवन के प्रत्येक पक्ष व क्रिया-कलापों में '**विश्व-स्तरीय सोच**' देने के लिए प्रयत्न-शील हो रहे हैं, किन्तु आशङ्का इस बात की है कि हमारी '**विश्व-स्तरीय सोच**' केवल '**औद्योगिकीकरण-नीति-निर्धारण**' तक ही सीमित होकर न रह जाए! हमें अपनी '**सोच**' में एक ऐसा '**विश्व-स्तरीय आयाम**' लाने की आवश्यकता है, जिससे परस्पर '**सङ्घर्ष**' एवं '**आतङ्क-वाद जैसे भीषण सङ्कटों**' से '**विश्व-समाज**' को सुरक्षित रखा जा सके और हम शान्ति-पूर्ण '**सह-अस्तित्व**' के पक्ष-धर बनकर, '**विश्व-स्तर**' पर मानव-समाज को कल्याण-कारी विकास-दिशा प्रदान कर सकें।

'**वैश्वीकरण युग**' को सार्थक बनाने के लिए यह भी आवश्यक है कि हम '**विश्व-स्तरीय सोच**'—'**चिन्तन**' में '**सात्त्विक**' एवं '**आध्यात्मिक ज्ञान**' का योग-दान करें। इसके द्वारा पृथक्-पृथक् सब '**भूलों**' में एक अविनाशी '**परमात्म-भाव**' को विभाग-रहित '**सम-भाव**' से स्थित देखना होगा। '**सात्त्विक ज्ञान**' को परिभाषित करते हुए यही बात **विश्व-गुरु भगवान् श्रीकृष्ण** ने '**श्रीगीता**' के १८वें अध्याय में **अर्जुन** से कही है—

सर्व-भूतेषु येनैकं, भावमव्ययमीक्षते।
अविभक्तं विभक्तेषु, तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम्॥ (१८/२०)

अस्तु! '**विश्व-मानव-कल्याण**' के लिए '**विश्व-समाज**' के सर्वाङ्गीण विकास के लिए आज की विकसित '**सूचना-प्रौद्योगिकी**' का प्रयोग ऐसे ही '**सात्त्विक-ज्ञान**' के प्रचार-प्रसार के लिए '**विश्व-स्तर**' पर किया जाना चाहिए। साथ ही, '**अज्ञान**' से मोहित रहनेवाले मनुष्य-समाज की '**आसुरी प्रवृत्तियों**' का दमन '**विश्व-स्तर**' पर किया जाना चाहिए।

❋❋❋

गुप्तावतार 'बाबाश्री'

भगवान् श्रीकृष्ण–'**विश्वम्भर**', '**प्राणेश्वर**', '**परमात्मा**' हैं। '**विश्वम्भर**', '**प्राणेश्वर**', '**परमात्मा**' के रूप में वे अत्यन्त गुप्त रूप से हम सभी मनुष्यों के हृदय में विराजते हैं और सतत हमारी '**अज्ञानता**' का हरण कर, हमें '**धर्म-मार्ग**' पर प्रतिष्ठित करते हैं। इसीलिए कहा गया है कि–'**कर्षति पापानि यः, स वै कृष्णः।**'

'राष्ट्र-गुरु' श्री स्वामी जी महाराज

'गीता' में भगवान् ने अर्जुन को बताया है–'**हे अर्जुन! तुम जो कुछ करते हो, उसे ईश्वरार्पण बुद्धि से करो, इससे तुम बन्धन से मुक्त होकर पूर्ण सुखी होगे।**' यह उपदेश '**केवल अर्जुन**' के लिए ही नहीं था, '**अर्जुन**' को निमित्त बनाकर सभी मनुष्यों को दिया गया है।....."

'चण्डी'-पुस्तक-माला नवीन विशिष्ट पुस्तकें

महा-पर्व नवरात्र विशेषांक

नवीन सचित्र संस्करण

अनुदान १००/-

श्रीश्रीविद्या सपर्या-वासना

पं० योगीन्द्रकृष्ण दौर्गादत्ति जी शास्त्री कृत

अनुदान १००/-

सांख्यायन तन्त्र

राष्ट्र-गुरु स्वामीजी की कृपा से प्राप्त

अनुदान ८०/-

उक्त नवीन पुस्तकों को मँगाने हेतु सम्पर्क करें-

श्रीचण्डी-धाम

अलोपी-देवी मार्ग; प्रयाग-०६ ☆ फोन ०५३२-२५०२७८३, ९४५०२२२७६७

E-mail : Chandi_dham@rediffmail.com

विश्व-गुरु भगवान् श्रीकृष्ण की साधना

संसार में जिन्हें अपना **अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्धी** कहा जाता है, वे '**शरीर, पुत्र, स्त्री**' आदि कुछ नहीं हैं, असत् हैं, परन्तु मनुष्य उनके मोह में ऐसा पागल-सा हो जाता है कि रात-दिन उनको मृत्यु का ग्रास होते देख कर भी चेतता नहीं है। इसलिए जो '**अभय**'-**पद** को प्राप्त करना चाहता है, उसे **सर्वात्मा, सर्व-शक्तिमान् विश्वम्भर भगवान् श्रीकृष्ण का** '**स्मरण-पूजन**' करना चाहिए।

-मुनि शुकदेव, 'श्रीमद्-भागवत'

भगवान् श्रीकृष्ण अपने भक्तों को अपनी ओर ऐसे ही खींचते हैं, जैसे सामने आए हुए जड़ लोहे को चुम्बक अपनी ओर खींचता है। कृपा करते समय **विश्वम्भर भगवान् श्रीकृष्ण** यह नहीं विचारते कि जाति, रूप, धन और आयु से यह उत्तम है या अधम, स्तुत्य है या निन्द्य।

-आदि-शङ्कराचार्य, 'प्रबोध-सुधाकर'

प्रकाशक : **श्रीऋतशील शर्मा, श्रीचण्डी-धाम**, प्रयाग-६ ☎ ०९४५०२२२७६७